CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६७४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हि० सा०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१८६८

~~दि: आ~~ ३६८४

KATHMANDU NEPAL

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

५२

दिनकर की 'उर्वशी'

(समीक्षात्मक अनुशीलन)

रमाशंकर तिवारी

एम० ए० (हिन्दी-अंग्रेजी), रिसर्च स्कॉलर,

प्राचार्य, गोरेलाल मेहता महाविद्यालय,

बनमनखी, पूर्णियाँ (बिहार),

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० संवत् २०१९
मूल्य : ३-००

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1962
Phone : 3076

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्री गणेशाय नमः श्री सरस्वत्यै नमः

THE

VIDYABHAWAN RASTRABHASA GRANTHAMALA

52

A CRITICAL APPRAISAL

Of

THE URVASHI OF DINAKARA

By

S'ri Ramashankar Tiwary, M. A.,

PRINCIPAL, G. M. COLLEGE, BANMANKHI, PURNEA (BIHAR)

THE

CHOWKHAMBA VIDYA BHAWAN

Chowk Varanasi-1 (India) Phone : 3076

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक-परिचय

श्री रमाशंकर तिवारी, एम० ए०, एक दशक तक सतीशचन्द्र कालेज, बलिया (उत्तरप्रदेश), में अंग्रेजी साहित्य के वरिष्ठ प्राध्यापक रहे हैं। अभी ये गोरेलाल मेहता महाविद्यालय, बनमनखी, पूर्णियाँ (बिहार), में प्राचार्य-पद पर आसीन हैं।

आपकी पुस्तक 'महाकवि कालिदास' अल्प समय में ही प्रचुर ख्याति एवं लोक-प्रियता प्राप्त कर चुकी है।

'उर्वशी' का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित अनुशीलन अभी पंडितों के सामने है। 'बिहारी की काव्य-श्री' तथा 'प्रयोगवादी काव्य-धारा' आपकी अन्य समीक्षात्मक कृतियाँ हैं जिनमें से दूसरी अभी यंत्रस्थ है।

आपके दर्जनों निबंध हिन्दी और अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षादर्शों में साथ-साथ ओत-प्रोत होने के कारण, आपकी रचनाओं में चिन्तन की तटस्थता और चर्वणा की रस्यमानता दोनों के एक-साथ दर्शन होते हैं। आपकी सूक्ष्म विश्लेषण-दृष्टि तथा बारीक-से-बारीक सौन्दर्य-संकेतों को पकड़ने की अनुपम क्षमता की प्रशंसा हो चुकी है।

आपका शोध-प्रबन्ध, 'सूरदास की शृङ्गारभावना,' भागलपुर विश्वविद्यालय में अभी-अभी समर्पित हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनी बात

डॉ० दिनकर की 'उर्वशी', बड़ी सज-धज के साथ, ऐसे समय प्रकाशित हुई जिसके आस-पास मेरी पुस्तक 'महाकवि कालिदास' भी प्रकाश में आई थी। 'उर्वशी' की प्रतिपाद्य वस्तु से परिचित होने की मेरी जिज्ञासा अत्यन्त बलवती सिद्ध हुई क्योंकि 'विक्रमोर्वशीय' की झंकृतियाँ मेरे अन्तर्मानस में क्वणन कर रही थीं और मैं भारतीय वाङ्मय की सनातन उर्वशी के इस नवीन अवतार की अर्चना में भी अपनी कुसुमाञ्जलियाँ समर्पित करने के लिए अधीर हो उठा। प्रस्तुत समीक्षा मेरे इस संकल्प का परिणाम है।

किन्तु, एक बात का शील-संकोच मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने लगा था : यह कि दिनकर-जैसे प्रभावशाली व्यक्ति की प्रस्तुत परिपक्व रचना के सौन्दर्योन्मीलन का साहस कहीं ऐसा अविवेक न सिद्ध होवे जिसके लिए प्रसिद्ध आंग्लकवि पोप ने कहा था : "*Fools rush in where angels fear to tread* "। परन्तु, भारतीय हिन्दी परिषद् के विगत कलकत्ता अधिवेशन की निबंध-गोष्ठी (दिसम्बर, १९६१) में जब मैंने 'उर्वशी' के ऊपर एक छोटा-सा निबंध पढ़ा और देखा कि पंडित-गण उससे प्रसन्न एवं परितुष्ट हैं, तब हमारा संकोच मिट गया और हमने अपने अध्ययन को सुव्यवस्थित समीक्षा का रूप प्रदान कर दिया।

प्रस्तुत समीक्षा की योजना अनुक्रमणिका के ऊपर दृष्टिपात करने से स्वतः प्रत्यक्ष हो जायेगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक बात और कह दूँ। यदि डॉ० दिनकर से व्यक्तिगत परिचय रहा होता, तो शायद मेरा प्रस्तुत परिशीलन पूर्णतया तटस्थ एवं निस्संग नहीं हुआ होता। अभी यह जिस रूप में आपके समक्ष उपस्थित है, वह, मेरी बुद्धि एवं विचारणा में, तत्त्वाभिनिवेशी समीक्षा के अनुरोधों का सम्यक् समादर करता है—कम-से-कम प्रतिज्ञा ऐसी ही रही है।

मैं, अन्त में, श्री मोहनदास गुप्त एवं श्री विट्ठलदास गुप्त, व्यवस्थापक, चौखम्वा संस्कृत सीरीज आफिस तथा चौखम्वा विद्याभवन, वाराणसी, के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने 'महाकवि कालिदास' के समान, प्रस्तुत पुस्तक को भी इतनी तत्परता के साथ प्रकाशित किया है।

सरस्वती-निकेतन,
वलिया
(उत्तरप्रदेश)

रमाशंकर तिवारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पत्नी को—

"नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
 विश्वास-रजत-नग-पग-तल में,
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो
 जीवन के सुंदर समतल में।"

(कामायनी)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुक्रमणी

(१) प्राकरणिक परिशीलन	... ...	१
(२) सामान्य समीक्षा	... ...	५४
(३) काव्य-शिल्प	... ...	७२
(४) संग्राहक प्रतिभा	... ...	७८
(५) मूल्यांकन	... ...	६४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१

प्राकरणिक परिशीलन

(क)

'उर्वशी' दिनकर की नवीनतम नाट्य-कविता है। भारतीय साहित्य की सुप्रसिद्ध उर्वशी-पुरूरवा की प्रणय-कथा इसका कथानक है जो संक्षिप्ततया यों कहा जा सकता है: सखी अप्सराओं के साथ उर्वशी कुबेर के घर से लौट रही है जब कि वह एक दानव द्वारा अपहरण कर ली जाती है। सखियों की त्रासमयी पुकारें सुन कर, गगन-मार्ग से जाता हुआ राजा पुरूरवा उस दैत्य से उर्वशी का उद्धार करता है। राजा के रूप पर मुग्ध होकर वह उसके प्रणय-पाश में बँध जाती है। पुरूरवा भी उर्वशी के प्रेम में तड़पने लगता है। उसकी राज-महिषी औशीनरी है जो एकान्त पतिव्रता होने पर भी, उसके प्यार के प्रसाद से वंचित है। चित्रलेखा एक दिन उर्वशी की उद्वेजना से त्रस्त होकर, उसे मर्त्य-लोक में उतारती और पुरूरवा के प्रमद-वन में छोड़ देती है जहाँ पुरूरवा से उसका प्रेम-मिलन सम्पन्न होता है। पुरूरवा अपने प्रेम की अधीरता का मर्मस्पर्शी शब्दों में वर्णन करता है तथा यह वचन देता है कि वह उर्वशी के साथ जीवनपर्यन्त विहार करेगा। दाम्पत्य-रस के उपभोगार्थ वे दोनों गन्धमादन पर्वत पर चले जाते हैं और प्राकृतिक सुषुमाओं के बीच एक वर्ष व्यतीत कर राजधानी लौट आते हैं। उर्वशी गर्भवती हो गई है और अपने नवजात शिशु आयु को महर्षि च्यवन के आश्रम में उनकी पत्नी सुकन्या की देख-रेख में छोड़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देती है क्योंकि भरत ने उसे शाप दिया है कि जिस दिन राजा उर्वशी के पुत्र को देख लेगा, उसी दिन उर्वशी पृथिवी छोड़ कर स्वर्ग में लौट आएगी। सोलह वर्ष की अवस्था तक आयु ऋषि के आश्रम में पलता है, और तब सुकन्या पति की आज्ञा से आयु को पुरूरवा की राज-सभा में ला उपस्थित करती है। पुरूरवा अतीव आनन्द एवं आश्चर्य से अपने पितृत्व का संवाद सुनता है। किन्तु, इसी अकल्पित उल्लास की घड़ी में उर्वशी अदृश्य हो जाती है। सुकन्या इस रहस्य का अनावरण करती है जिससे पुरूरवा को मर्मान्तक पीड़ा पहुँचती है और वह आयु को राज्याभिषिक्त कर, प्रव्रज्या ग्रहण कर लेता है तथा वन में चला जाता है।

यह उर्वशी-पुरूरवा कथा का सामान्य रेखा-चित्र है जिसे दिनकर की प्रस्तुत रचना में स्वीकार किया गया है। किन्तु, उन्होंने कथानक को सजाने-सँवारने के लिए कतिपय नवीन प्रकरणों को सन्निविष्ट किया है। आरम्भ में अप्सराओं के आकाश से नीचे उतरने के उल्लास का रमणीय चित्र अंकित किया है। इस नवीन प्रसंग से अप्सराओं की प्रकृति का सुन्दर उन्मीलन हुआ है और उर्वशी के उल्लेख का सहज, किन्तु नाटकीय ढंग से, अवसर उपस्थित हो गया है। दूसरी नवीन उद्भावना है, पुरूरवा के स्वप्न की जिसमें वह देखता है कि नगर में एक नव वट-पादप लाया गया है जिसे, अन्य नागरों के साथ, वह भी दूध से सींच रहा है, किन्तु उसे कोई पहचानता नहीं; तब वह वरिष्ठ कुंजर पर आरूढ़ हो, नगर के बाहर कानन में पहुँचता है जहाँ निर्जन शून्य व्याप्त हो जाता है और उसका हाथी भी उसे छोड़, चोरी से, निकल गया है; तदनन्तर एकाकी भटकता हुआ, वह च्यवन के आश्रम में पहुँचता है जहाँ एक परिपुष्ट अंगों वाला दिव्य बालक, धनुष की प्रत्यंचा माँजते हुए, उसे दिखाई देता है और जब राजा उसे भेंटने के लिए विकल-प्राण दौड़ता है, तब वह सम्पूर्ण दृश्य तिरोहित हो जाता है। इस स्वप्न की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याख्या में ज्योतिषी बताता है कि राजा आज संध्या तक अपने पुत्र को राज्य-भार सौंप कर प्रव्रजित हो जाएगा। इसी व्यग्रता के संदर्भ में सुकन्या कुमार आयु को लेकर सभा में प्रवेश करती है। स्वप्न की उद्भावना से कथानक की नाटकीयता में यथेष्ट वृद्धि हो गई है और उसे सुकन्या द्वारा आयु के प्रस्तुतीकरण से जोड़ कर, कवि ने प्रचुर प्रभविष्णुता उत्पन्न कर दी है। तीसरी अभिनव उद्भावना है, पुरूरवा के संन्यास-ग्रहण की। 'विक्रमोर्वशीय' में कालिदास ने उर्वशी को इन्द्र द्वारा पुनः पुरूरवा की जीवन-संगिनी के रूप में प्रत्यावर्तित करना दिखाया है और नाटक पूर्णतः सुख-पर्यवसायी बन गया है। दिनकर ने पुरूरवा को प्रव्रजित चित्रित कर, रचना को प्रायेण दुःखान्त बना दिया है। चौथी तथा अंतिम नवीनता का संबन्ध रानी औशीनरी के विलाप से है। ऐसा भासित होता है कि पुरूरवा की प्रव्रज्या के साथ नाटक का अवसान होना चाहिए क्योंकि वही उसके उर्वशी-प्रणय का चरम परिपाक है। किन्तु, कवि ने औशीनरी के 'दर्द' को भी पहचाना है और इसी लिए वह उस सती-साध्वी नारी की अकल्पित वेदना की उपेक्षा नहीं कर सका है। एक और नवीनता जो उद्भावना नहीं है, अपितु परिचित प्रसंग की परित्यक्ति है, उर्वशी के लता-रूप में परिवर्तित हो जाने वाली घटना का तिरस्कार है। कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीय' में इस घटना का सन्निवेश कर, उर्वशी–वियोग से पुरूरवा को विजड़ित एवं विक्षिप्त चित्रित किया है और अन्त में, भरत-शाप से उत्पन्न वियोग को निरस्त कर, उर्वशी-पुरूरवा के दाम्पत्य को स्थायित्व प्रदान कर दिया है। किन्तु, दिनकर ने गंधमादन–प्रकरण को एकान्त संयोग का स्वरूप देकर, अन्ततोगत्वा उर्वशी-पुरूरवा के प्रणयानन्द को सर्वदा के लिए व्यापन्न कर दिया है। तीसरे अंक में उन्होंने अपनी प्रधान उपलब्धि—प्रेम के दैहिक उपभोग को अतिक्रान्त कर, मन के उत्तुंग महल में अधिरोहण तथा भूमा की प्राप्ति—की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ख)

उर्वशी-पुरूरवा प्रणय के उद्रेक के प्रभावशाली चित्र कवि ने अंकित किये हैं। उर्वशी का पूर्वराग 'मंजिष्ठा राग' की सान्द्रता से भर गया है। किन्तु, इसके चित्रण में व्याधि, प्रलाप, उद्वेग इत्यादि काम-दशाओं के परिचित चित्र नियोजित नहीं किये गए हैं। कवि ने इनमें से अधिकांश मनोदशाओं को सन्निविष्ट किया है; किन्तु, कथन की शैली भिन्न है, भाषा भिन्न है, भंगी भी भिन्न है। उर्वशी का मनस्सरोवर पुरूरवा-मिलन की लोल, व्यग्र ऊर्मियों से आलोड़ित हो गया है। उसका अडिग निश्चय है कि यदि आज उसे कान्त का अंक प्राप्त नहीं होगा, तो वह निश्चिततया शरीर को छोड़ कर पवन में मिल जायगी। उसे अपने भाग्य की सही-सही प्रतीति स्वयं नहीं है, फिर भी, वह वसुधा पर जाने के लिए कृत-संकल्प है। देव-धाम अब उसे सुखद नहीं रह गया है, सौरभ को साँस भर-भर कर पीने से अब उसे तृप्ति नहीं मिल रही है, स्वर्ग के, स्वप्न-जाल को छोड़ कर, वह 'सत्य का स्पर्श' एवं 'जीवित हर्ष' की खोज करना चाहती है—

"नहीं दीखती कहीं शान्ति मुझ को अब देव-निलय में,
बुला रहा मेरा सुख मुझ को प्रिय के बाहु-वलय में।

× × ×

स्वर्ग स्वप्न का जाल, सत्य का स्पर्श खोजती हूँ मैं,
नहीं कल्पना का सुख, जीवित हर्ष खोजती हूँ मैं।
तृप्ति नहीं अब मुझे सांस भर-भर सौरभ पीने से,
ऊब गयी हूँ दबा कंठ, नीरव रहकर जीने से।"

इन पंक्तियों में अभिलाष, चिन्ता, तथा अधृति के तत्त्व समाविष्ट हुए हैं, किन्तु कवि की नई भंगी एवं भणिति ने शृंगार के सामान्य बिम्ब-विधान से इन्हें पृथक् कर दिया है। नीचे एक बिम्ब देखिये जिसके प्रकाश में पूर्वानुराग की मनोदशाओं का शास्त्रीय निरूपण फिर से किया जा सकता है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"लगता है, कोई शोणित में स्वर्ण-तरी खेता है,
रह-रह मुझे उठा अपनी बाँहों में भर लेता है।
कौन देवता है जो यों छिप-छिप कर खेल रहा है,
प्राणों में रस की अरूप माधुरी उँडेल रहा है।
जिसका ध्यान प्राण में मेरे यह प्रमोद भरता है,
उससे बहुत निकट होकर जीने को जी करता है।"

इस चित्र में ध्वनित काम-दशा शास्त्र में निरूपित एकादशी में समाहित नहीं की जा सकती, जब तक कि उन-उन दशाओं की व्याप्ति-सीमा को सुस्फीत या परिष्कृत न किया जाय। मैं प्रस्तुत पंक्तियों के मूल भावोद्वेलन को ध्यान में रखते हुए, 'शोणित-विप्लव' की संज्ञा निर्दिष्ट करूँगा।

उर्वशी के प्रेम की आग पुरूरवा के हृदय में भी प्रेम-दाह उत्पन्न किये है। 'अमर्त्य के मन' में दहकने वाली अग्नि की 'ज्वाला' 'मर्त्य' के मन को भी जला रही है: "ताप उभयदिक् सम है।" अतएव, उर्वशी-पुरूरवा प्रणय-परिपाक में कोई सन्देह का अवकाश नहीं है। केवल व्याघात की एक क्षीण संभावना इस बात में है कि राजा के एक रानी भी है। लेकिन, उसका निराकरण चित्रलेखा के शब्दों में इस बात से हो जाता है: "भय की क्या बात है ? किस राजा का प्रणय एक घाट पर बँधा रहता है ? श्रीमन्त लोग प्रेम का नया बोध करते ही रहते हैं, नित्य नई सुन्दरताओं पर मरते ही रहते हैं। सहधर्मिणी कुल के पोषणार्थ आती है, न कि पति को नित्य नूतन मादकता से भरने के लिये। × × × × कुल-कामिनी जो भी हो, उर्वशी हृदय की रानी रहेगी, नृपति के प्रणय की एकमात्र पूर्ण स्वामिनी बनेगी।"[1]

चित्रलेखा का साक्ष्य है कि उर्वशी की सौन्दर्यमूर्ति ने विक्रमशील एवं चिन्तनशील राजा को एक मधुर धक्का (Sweet

---

१ 'उर्वशी', पृ० २२–२३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

shock) दिया है—"कब था ज्ञात मुझे, इतनी सुन्दर होती है नारी ?" पूर्वानुराग की 'गुण-कथन' नाम्नी काम-दशा के अन्तर्गत कवि ने उर्वशी का रूप-चित्र अंकित किया है। "उसके लाल-लाल चरण कमल से, कुंकुम-से, जावक-से लुभावने हैं। शरीर की रक्तिम कान्ति मानो पावक से धुली हुई है। संसार भर की माधुरी अरुण अधरों में समाहित है। निद्रालु नयनों में वारुणी-रंग की छाया विलसती है। तन की प्रकान्ति अनन्त ऊषाओं की मुकुलित लालिमा से स्पर्धा करती है। कान्ति की नूतनता सम्पूर्ण संसार की संचित हरियाली-सी लगती है। पग पड़ते ही मानों धूलों से मूँगे की राशियाँ फूट पड़ती हैं। जहाँ खड़ी होती है, वहाँ श्वेत फूलों से व्योम भर जाता है।"[1]

कवि ने इस रूप-चित्रण में नख-शिख अथवा शिख-नख की किसी विशिष्ट प्रणाली का अनुगमन नहीं किया है। चरण से आरम्भ कर, तन की कान्ति तथा अधरों की माधुरी एवं नयनों की मदिर छवि के अंकन के बाद, वह पुनः शरीर की कान्ति तथा चरणों की दीप्त अरुणिमा की ओर लौट आता है। यह चित्र व्यवस्थित एवं सुगठित नहीं कहा जाएगा। जहाँ उर्वशी के मादक रूप की अनुभूति पाठक को सशक्त भाव से नहीं हो सकी है, वहीं पुनरुक्ति-दोष का प्रवेश भी हो जाता है। कवि उर्वशी की रूप-दीप्ति से ही अधिक अभिभावित है और बाद की पंक्तियों में उसे प्रकृति के दर्पण, कला के अभीप्सित सौन्दर्य, निखिल भुवन की आभा तथा स्रष्टा के मन की निष्कलुष कामना की गरिमा से समन्वित कर देता है—

"दर्पण, जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है,
वह सौन्दर्य, कला जिसका सपना देखा करती है।
नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवन की;
रूप नहीं; निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की।"

---

१ वही, पृ० २४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उर्वशी की रूप-कान्ति की यह माया रोमांटिक सौन्दर्य के सर्वथा अनुकूल है, किन्तु यह हमारे 'दैनंदिन भोजन' की माँग को परितृप्त नहीं करेगी। जहाँ पुरूरवा ने उर्वशी के विभिन्न अंगों का वर्णन किया है, वहाँ भी वह रहस्य के आवरणों में लपेट दी गई है। तीसरे अंक में रूप-माधुरी यों चित्रित है: "ये लोचन किसी अन्य जगत् के नभ के दर्पण हैं। इन कपोलों की द्युति में ऊषा की किरण तैरती है। इन किसलय से अधरों में स्वयं मदन नृत्य करता है। इन कानों में जुगनुओं के अश्रु-विन्दु झरते हैं। ये बाँहें चन्द्रमा के प्रकाश की दो नवीन किरणों के समान हैं। उरोजों के कुसुम-कुंज सुरभित विश्राम-भवन हैं जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर श्रान्ति का अपनयन करते हैं। मुसकान किसी दूरागत किरण की विभा है। ये समस्त अंग एवं उपकरण पुरूरवा के मन में किसी अदृश्य किन्तु अभिलषित जगत् का ध्यान जगा देते हैं।"[1] सच यह है कि पुरूरवा रहस्य-चिन्तक है और इसी कारण, उर्वशी का पार्थिव माधुर्य से मंडित रूप भी उसे रहस्य के धरातल पर ही आकर्षित कर सका है।

पुरूरवा का पूर्वानुराग गुण-कथन की सीमा से आगे बढ़ कर विभिन्न काम-दशाओं में परिपोष पाता है और उर्वशी उसकी समस्त चेतना को आच्छादित कर देती है—

"आह! कौन मन पर यों मढ़ सोने का तार रही है?
मेरे चारों ओर कौन चाँदनी पुकार रही है?"

उसने पुरूरवा के प्राण-नभ में नक्षत्रों के बीज बो दिये हैं और उसे रसमयी वेदनाओं में डुबो दिया है। वह किस प्रकार अपने मन की पीड़ा उस स्वर्गीय रूपसी तक पहुँचाए? किन्तु, सृष्टि में एक ही मनस्तत्त्व की व्याप्ति के ध्यान से पुरूरवा आश्वस्त होता है कि उसकी विरहाकुल पुकार से स्वर्ग कभी अवश्य डोल उठेगा, और "नीलिमा-पुंज हमारा मिलन-मार्ग खोलेगा।" सहजन्या के शब्दों में, मानव प्रणय-व्रती की यह कराल वेदना

१. उर्वशी पृष्ठ ९१–९२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विस्मय-जनक है। नर का यह मानसिक उद्वेलन नारी के सौन्दर्य की शोभा है : राका की विजय तभी पूर्ण होती है जब रत्नाकर लहराने लग जाता है।[1] कवि प्रणयोद्रेक के प्रभाव के चित्रण में सुन्दर सफलता प्राप्त कर पाया है।

(ग)

'उर्वशी' की एक विशेषता है, पुरुष और नारी के निसर्गों का निरूपण। इसका प्रधान स्थल है दूसरा अंक, जिसमें रानी औशीनरी को उसकी सखी निपुणिका द्वारा पुरूरवा-उर्वशी के प्रथम मिलन की सूचना दी गई है और यह भी बताया गया है कि राजा उर्वशी को साथ लेकर एक वर्ष पर्यन्त विहार करने के लिए गन्धमादन पर्वत पर चले गये हैं और जाते समय मंत्रियों से कह गए हैं कि वहाँ से प्रत्यागत होकर, वे नैमिषेय नामक यज्ञ करेंगे। निपुणिका सूचनाएँ देती है जिस पर रानी औशीनरी तथा दूसरी सखी मदनिका नारी एवं पुरुष के स्वभावों पर टिप्पणियाँ करती हैं।

प्रेम का प्राथमिक उदय पुरुष-हृदय की सम्पूर्ण कोमलता एवं सुकुमारता को प्रकाश में ला देता है। अतएव, वही पुरुष-प्रकृति का सबसे विश्वसनीय उन्मीलक समझा जाएगा। मदनिका कहती है कि प्रीति के प्रथम-प्रथम जगने पर नारी नर को दुर्लभ स्वप्न के समान सुरम्य प्रतीत होती है। वह नारी-जीवन की अत्यन्त गौरव-मय घड़ी होती है जब 'अजेय केसरी' तन-मन की समस्त सुधि खो कर, नारी के चरणों पर पड़ा-पड़ा, उसका मुख निहारा करता है। पुरुष को पूर्णतया विजित करने का वही एक-मात्र मुहूर्त्त होता है—

"यही लग्न है वह जब नारी, जो चाहे, वह पा ले,
उडुओं की मेखला, कौमुदी का दुकूल मँगवा ले।

१. वही, पृ० २४–२५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रगवा ले उँगलियाँ पदों की ऊषा के जावक से,
सजवा ले आरती पूर्णिमा के विधु के पावक से।।"

जब नारी की सौन्दर्य-वारुणी का पान पुरुष कर लेता है, तब उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व—तप, ज्ञान, मान, अभिमान—प्रमदा के चरणों पर चढ़ जाता है, वह अशेष भाव से उसके प्रति आत्म-समर्पण कर देता है। मदनिका कहती है कि नारी का हृदय प्रेम के प्रतिदान में उसी आतुरता के साथ नहीं धधका करता; वह सागर को बन्धन में समेट रखना चाहती है, उसके मन में ज्वार जल्दी नहीं उत्पन्न होता।

अर्थात्, पुरुष तत्काल पिघलता है, तत्काल उफनाता है, तत्काल समर्पण करता है, तत्काल उत्सर्जन करता है। नारी गंभीर होती है, भावों के उद्वेलन को दबा कर रखना जानती है, शायद उसका संकोच एवं संयम आश्वस्ति की, परीक्षण की उसकी भीतरी प्रेरणा किंवा अभिलाषा के परिणाम हैं।

लेकिन, यह समझना संगत नहीं होगा कि नारी एकदम शीतल, निष्प्राण होती है। औशीनरी कहती है कि नारी, यद्यपि विलम्ब से ही, आश्वस्त हो जाने के बाद, जब संयम की सीमाओं का अतिक्रमण कर उफनाती है, तब तक पुरुष का प्रेम शिथिल हो गया होता है—

"किन्तु, बंध को तोड़ ज्वार नारी में जब जगता है,
तब तक नर का प्रेम शिथिल, प्रशमित होने लगता है।
पुरुष चूमता हमें अर्ध निद्रा में हमको पाकर,
पर, हो जाता विमुख प्रेम के जग में हमें जगा कर।।"

नारी-हृदय में जब ज्वार उत्पन्न होता है, तब पुरुष का उफान शान्त हो गया होता है। पुरुष नारी की 'अर्ध निद्रा' का ही रस लूटना चाहता है जब तक उसे नारी की मौन, निष्क्रिय स्वीकृति का विश्वास रहता है। किन्तु, जब वह भी सजग हो जाती है और सक्रियता एवं समानता के धरातल पर प्रेम का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपभोग चाहती है, तब पुरुष उससे पराङ्मुख हो जाता और उसे तिरस्कृत कर देता है। पुरुष-प्रेम में नैरन्तर्य नहीं होता जब कि प्रेम की आग एक बार जल जाने के बाद, नारी आँसुओं की माला पिरोती हुई, प्राणों की ज्वाला में सतत घृत की आहुति डाला करती है—

"और जगी रमणी प्राणों में लिये प्रेम की ज्वाला,
पंथ जोहती हुई पिरोती बैठ अश्रु की माला।"

पुरुष का भी इसमें क्या दोष? हृदय की सीधी, सरल आविर्भूति प्रेम नहीं है। यह विचित्र बात है कि

"जो अलभ्य, जो दूर, उसी को अधिक चाहता मन है।"

तो, प्रेम दूरी एवं अपरिचित का रोमांस चाहता है। यह तो प्रेम की प्रकृत प्रकृति है। इस पर भी, मदनिका का कथन है, नर में प्रति-क्षण अकुलाने की प्रवृत्ति होती है, पाने को वह तड़पता रहता है। पुरुष-स्वभाव का निम्न चित्रण अत्यन्त सटीक है—

"नयी सिद्धि-हित नित्य नया संघर्ष चाहता है नर,
नया स्वाद, नव जय, नित नूतन हर्ष चाहता है नर।
कर-स्पर्श से दूर, स्वप्न झलमल नर को भाता है,
छक कर जिसको पी न सका, वह जल नर को भाता है।
ग्रीवा में झूलते कुसुम पर प्रीति नहीं जगती है,
जो पद पर चढ़ गयी, चाँदनी फीकी वह लगती है॥"

नवीनता-प्रिय पुरुष को विजित करने के लिए, नारी का सबसे बड़ा अस्त्र है उसकी कला जो पुरुष को कभी परितृप्त नहीं होने दे। इस 'अतृप्ति के रस' में पुरुष को निमज्जित रखने के लिए, नारी

"क्षण-क्षण प्रकटे, दुरे, छिपे फिर-फिर जो चुम्बन लेकर,
ले समेट जो निज को प्रिय के क्षुधित अंक में देकर।"

औशीनरी ने आराध्य पति के चरणों पर सर्वस्व न्योछावर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर दिया है। वह भिक्षुणी-सदृश उसका मुँह देखा करती है। शायद यही उसकी दुर्बलता है और इसी कारण, 'नारी के भीतर के मान-पद्म को विकसित करने वाला सुख उसे नहीं मिलता—

"वह अवलोकन, धूल वयस की जिससे छन जाती है,
प्रौढ़ा पाकर जिसे कुमारी युवती बन जाती है।
अति पवित्र निर्झरी क्षीरमय दृग की वह सुखकारी,
जिसमें कर अवगाह नयी फिर हो उठती है नारी।"

प्रौढ़ा के युवती बन जाने की व्यंजना कितनी मधुर, कितनी सार्थवती है। यह भी नारी-निसर्ग की सुकुमारता पर मोहक प्रकाश डालता है। कहना यों चाहिए कि नारी का मनः-कमल वयस की धूल से कभी धूमिल नहीं होता—यदि प्रिय के नयनों के पवित्र क्षीर की धारें उसे सिंचित करती रहें। नारी-स्वभाव के इस पटल का उन्मीलन निश्चयमेव नारी-मनोविज्ञान के विद्यार्थियों के लिए एक नवीन उपलब्धि है।

मदनिका पुरुष की मधुकरी वृत्ति को नए ढंग से अनुवंचित करती है। यह वृत्ति उसकी सामर्थ्य नहीं, विवशता है। प्रणय-भूख से वह सदैव आक्रांत रहता है और नई-नई विजयों के लिए तड़पता रहता है। यह उसकी दुर्बलता ही है, और इसी लिए,

"असफलता में उसे जननि का वक्ष याद आता है,
संकट में युवती का शय्या-कक्ष याद आता है।"

अतएव, नारी मातृ-रूप में या प्रेमिका-रूप में पुरुष का एक-मात्र अवलंब है। मदनिका का कथन है कि नरों में भी जो जितना विक्रमी एवं तेजवान् होता है, वह उतनी ही आसानी से फूलों से कट जाता है, उतनी ही सहजता से रूपसी नारी उसे विजित कर लेती है। यह कथन पुरुष-प्रकृति के एक मौलिक सत्य को उद्घाटित करता है—यह कि जिस भीतरी स्रोत से पौरुष का प्रवाह निकलता है, उसी से प्रणय की निर्झरिणी भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल-कल निनाद करती फूट पड़ती है; तेज एवं पराक्रम की अग्नि और स्निग्धता एवं सुकुमारता का पीयूष, दोनों मूलतः एक ही उत्स की प्रसूतियाँ हैं।

(घ)

तीसरे अंक में प्रणय के प्ररूढ़ स्वरूप को चित्रित करने का स्वर्णमय सु-अवसर कवि को प्राप्त हुआ है। वस्तुतः कवि इस अंक को ही अपनी सर्वोत्कृष्ट सफलता समझता प्रतीत होता है। नाटक का मौलिक द्वन्द्व इसी अंक की संयोग-भूमि में प्रतिफलित हुआ है। अतएव, इसकी तनिक विस्तृत समीक्षा आवश्यक हो जाती है।

यहाँ स्पष्टतया यह कहने में हमें तनिक संकोच नहीं है कि हम प्रस्तुत प्रसंग में संयोग-चित्रों की एकान्त माधुरी के अभिलाषी थे। किन्तु, पुरूरवा के मानसिक संघर्ष को गहरे रंगों में उभारने की पूर्व-चिन्ता ऐसा होने देने में बाधक सिद्ध हुई है। इतनी गहरी तड़पन तथा सिहरन, इतने गहन शोणित-विप्लव के बाद जब प्रणयि-युगल मिलेंगे, तब उनकी दैहिक भूखों के हृदयावर्जक चित्र ही अपेक्षित होंगे, प्रकाम्य होंगे। कवि के अपने उद्देश्य की विशिष्टता का हमें ध्यान है; किन्तु, हमारा वक्तव्य है कि संयोग-माधुरी की मोहक कुल्याएँ प्रवाहित करने के बाद भी, बीच भी, विचारों एवं नैतिक मन्तव्यों की नौका संचारित की जा सकती थी। कवि की समर्थ सरस्वती के लिए, उसकी अघटन-घटना-पटीयसी कल्पना वा प्रतिभा के लिए यह असम्भव नहीं था; वह अस्वाभाविक भी नहीं होता क्योंकि भारतीय साहित्य के अध्येता के समक्ष 'कुमारसंभव' में प्रतिष्ठित महान् योगी एवं महान् भोगी शंकर का विराट् चरित्र विद्यमान था।[1] संभोग के जो थोड़े चित्र तीसरे अंक में उपलब्ध हैं, वे कवि की उद्देश्य-गरिमा के महार्णव में डूब गए हैं।

---

१. रमाशंकर तिवारी : 'महाकवि कालिदास,' पृ० १०३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्तुत अंक का प्रारंभ ही पुरूरवा की मनोदृष्टि के किसी 'विस्मय' में डूबने के उल्लेख से हुआ है। अतएव, वह पहले ही रहस्य-चिन्तक के रूप में उपस्थित किया गया है। उर्वशी प्रथम मिलन की स्मृतियों का बखान करती हुई, पुरूरवा को उपालंभ देती है कि वह यश एवं प्रताप का, फूलों एवं कलियों का आनन्द लूटता हुआ महल में बैठा रह गया और उसे मिला तभी जब वह 'ललना की मर्यादा' गवाँ कर, स्वर्ग-लोक छोड़ स्वयं पृथिवी पर आ गई। पुरूरवा अपने प्रेम की निष्ठा का विश्वास दिलाता हुआ, अपनी विवशता की विज्ञप्ति करता है, यह कि क्षत्रिय किसी से भीख कैसे माँग सकता है ? कहता है—

"चिर कृतज्ञ हूँ इस कृपालुता के हित, किन्तु,
मिलन का इसे छोड़ कर कौन पंथ संभव था ?"

'चिर कृतज्ञ हूँ इस कृपालुता के हित' में आधुनिक "I shall be grateful to you for this favour" की ध्वनि आती है जिसमें सचाई का कितना अंश रहता है, यह हमसे छिपा नहीं है। प्रणय-राज्य में इस जाति की औपचारिकता कथमपि स्पृहणीय नहीं है।

उर्वशी की ललना-सुलभ मर्यादा की रक्षा की चिन्ता समझ में आ सकती है। इसी लिए, वह भिक्षाटन के विकल्प-रूप में अपने अपहरण का निर्देश करती है : "हरण किया क्यों नहीं, माँग लाने में यदि अपयश था ?" पुरूरवा इस विकल्प का भी प्रत्याख्यान करता है और शुद्ध दार्शनिक मनोभंगी में मनुष्य को किसी अदृश्य शक्ति का झुका हुआ धनुष-मात्र बताता है जिसकी तनी हुई प्रत्यंचा पर उसकी इच्छा के बाण चला करते हैं। इसी संदर्भ में पुरूरवा अपने अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट उल्लेख करता है—

"मैं मनुष्य, कामना-वायु मेरे भीतर बहती है
कभी मंद-गति से प्राणों में सिहरन-पुलक जगा कर;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कभी डालियों को मरोड़ झंझा की दारुण गति से
मन का दीपक बुझा, बना कर तिमिराच्छन्न हृदय को।
किन्तु पुरुष क्या कभी मानता है तम के शासन को ?
फिर होता संघर्ष, तिमिर में दीपक फिर जलते हैं।

× × ×

नहीं इतर इच्छाओं तक ही अनासक्ति सीमित है,
उसका किंचित् स्पर्श प्रणय को भी पवित्र करता है।"

इन पंक्तियों का भाव ही सम्पूर्ण तृतीय अंक के विजृंभित विस्तार का (साठ पृष्ठों का) प्रतिपाद्य है। "मनुष्य के भीतर कामना-वायु बहती है जिससे मन का दीपक बुझ जाता है। किन्तु तमस् के इस शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया होती है और मनस् का प्रदीप पुनः जलता है। जल में रह कर कमल की नाईं जल से अलिप्त रहना ही मनुष्य का धर्म है। यह अनासक्ति प्रणय को भी पवित्र बनाती है।"—पुरूरवा के इस आदर्श में मनोविश्लेषण के 'ईड' तथा 'सुपर-ईगो' और गीता के अनासक्ति योग का विचित्र संमिश्रण ध्वनित होता है जो सामान्य भावकों के गले नहीं उतरता।

पुरूरवा की इस तर्कना पर उर्वशी के चकित-भाव का चित्रण सर्वथैव स्वाभाविक हुआ है। क्या वह पुनः किसी देवता के बाहु-वलय में फँस गई है ? क्या वह अंधकार की प्रतिमा है ? क्या वह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है जिसे पाकर त्वचा की नींद टूट जाती है ? क्या वह आलिंगन अंधकार है जिसमें बँध जाने पर, मनुष्य प्रकाश के महा-सिन्धु में उतराने लगता है। क्या वह चुम्बन तिमिर-शूल है जिससे तन-मन की सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं ? प्रणय के स्पर्शन, चुम्बन एवं आलिंगन प्रेमियों में जो नई चेतना, नई प्रतीति आविर्भूत करते हैं तथा प्राणों के जो नवीन क्षितिज उन्मीलित करते हैं, उन्हें कथमपि तिमिर की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती। सहृदय भावक उर्वशी की इस प्रतिक्रिया से तत्काल तादात्म्य ग्रहण कर लेता है। लेकिन,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरूरवा का प्रणय-भोग की प्रक्रिया के बीच अन्यमनस्क हो जाना—दृढ़ आलिंगन में उर्वशी को कसे रहने पर भी मनसा विषण्ण भाव से दूर हो जाना; क्षण में अगाध प्रेम-सिन्धु का आलोड़न तथा क्षण में अखंड शान्ति; क्षण में उर्वशी को प्रणयोत्फुल्ल दृष्टि से निहारना और क्षण में यह भाव कि "युवती नारी नहीं, प्रार्थना की कोई कविता है"—विचित्र, असंगत एवं अनुचित है। दिनकर की तर्कना है कि "नारी के भीतर एक और नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है जब शरीर की धारा, उछालते-उछालते, उसे मन के समुद्र में फेंक देती है, जब दैहिक चेतना से परे, वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँच कर निस्पन्द हो जाता है। और पुरुष के भीतर भी एक और पुरुष है जो शरीर के धरातल पर नहीं रहता, जिससे मिलने की आकुलता में नारी अंग-संज्ञा के पार पहुँचना चाहती है। परिरंभ-पाश में बँधे हुए प्रेमी परस्पर एक-दूसरे का अतिक्रमण करके किसी ऐसे लोक में पहुँचना चाहते हैं जो किरणोज्ज्वल और वायवीय है।"[1]

दिनकर की इस दलील से दो बातें निकलती हैं—प्रथम कि नर और नारी में शरीर की मांसलता से आगे बढ़ कर मन की सूक्ष्मता का भीतरी संसार वर्तमान है तथा द्वितीय कि प्रेम-मिलन की एक समाधि-अवस्था होती है जिसमें दैहिक आकुली तिरोहित हो जाती है। दोनों बातों का एक निष्कर्ष है, यह कि प्रणय में दैहिक उपभोग मानसिक मिलन की पवित्रता में पर्यवसित हो जाता है। दिनकर की यह तर्कना अपने में व्यवस्थित है तथा इससे किसी की अ-सहमति नहीं हो सकती। लेकिन, इस दलील की आड़ में जब पुरूरवा के उक्त प्रकार के आचरणों को संगत सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है, तब स्पष्ट ही एक मिथ्या (Falsification) की गंध आने लगती है। दैहिक उपभोग की परिणति मानसिक मिलन की प्रेम की

१. 'उर्वशी' की भूमिका, पृष्ठ 'ख'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुर्गम समाधि में हो, यह तो उचित एवं श्लाघ्य है। किन्तु, प्रेम के मांसल उपभोग की किसी विशिष्ट क्रिया के बीच अन्य मनस्कता का आविर्भाव केवल या-तो शारीरिक दौर्बल्य, या फिर किसी अन्य प्रसंग-बाह्य चिन्ता का ही परिणाम समझा जाएगा। पुरूरवा में दौर्बल्य की कल्पना की ही नहीं जा सकती। तो फिर, प्रसंगातिरिक्त कोई पूर्व-चिन्ता ही कारण हो सकती है। वह पूर्व-चिन्ता है परमेश्वर-मिलन की जिसमें प्रकृति के नैसर्गिक अनुरोध कृत्रिम अवरोध उत्पन्न करते हैं। प्रेम के अगाध सिन्धु तथा नीरव-निस्पन्द शान्ति का, युवती नारी तथा प्रार्थना की कविता का परस्पर प्रत्यावर्तन (Alternation) दूध से मक्खन निकालने के समान सजातीय व्यापार नहीं है। पुरूरवा के मन में ही जो संघर्ष परिचलनशील है—यह कि मूल्यों की तुला पर प्रणय को वरेण्यता दी जाय अथवा पारमार्थिक प्रेरणाओं को—वही उसके प्रणय-व्यापारों को बाधित करता रहता है। अर्थात्, उसके अन्तर्मन में दो विजातीय द्रव्यों की यौगपदिक उद्वेजनाएँ कार्यशील हैं। इसीलिए, वह प्रणय-रस की माधुरी का अव्याहत आनन्द नहीं ले पाता है। इसीलिए, दिनकर की दुर्गम प्रेम-समाधि में, निस्पन्द होने वाली दलील निस्सार है। वस्तुतः 'ज्वलन्त नर पर लटकता हुआ अंकुश' प्रेम की इस समाधि-दशा के आविर्भाव में बाधक सिद्ध होगा। दैहिक संभोग-सुखों को अतिक्रान्त कर मानसिक मिलन की पवित्र प्रतिष्ठा, पुरूरवा के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण के प्रति अतिशय आग्रह के कारण, प्रस्तुत कविता में नहीं हो पाई है। 'अभिज्ञानशाकुंतल' में जिस प्रकार धरती स्वर्ग से मिल गई है, मिट्टी के मनुष्य जिस प्रकार तपे-तपाए सुवर्ण के देवता बन गए हैं; मांसल कामनाएँ पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित्त की अग्नि में झुलस कर जिस प्रकार पवित्र आत्माओं के एकान्त मिलन में परिणत एवं परिष्कृत हो गई हैं, उसी प्रकार दिनकर ने भी यदि अपने मृन्मय प्रेमियों को पवित्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मिक परिणय में जोड़ दिया होता, तो उनकी रचना सहृदयों के हृदय का हार बन गई होती !

सबसे अस्वाभाविक बात यह है कि उर्वशी भी दार्शनिक मनोभंगिमा के चक्कर में पड़ गई है। पुरूरवा की प्राणयिक अन्यमनस्कता को वह साधारणीकृत कर देती है : "यह किसका अंकुश है जो ज्वलनशील मनुष्य को न जीवन का रस ही छक कर पीने देता है और न गंधों के आकाश में उसे देवता-सदृश जीने देता है ?" उर्वशी ने इस कथन में पुरूरवा की विशिष्टता को मनुष्य मात्र का पारिभाषिक धर्म मान लिया है और प्रेम-पिपासा की परितृप्ति के हेतु धरती पर आने का संकल्प करती हुई भी, दार्शनिक भंगी-भणिति का पल्ला पकड़ने लगी है।

आगे चल कर, पुरूरवा ने 'अंकुश' तथा 'आग' का द्वन्द्व खड़ा कर दिया है। देखिये—

"कौन है अंकुश, इसे मैं भी नहीं पहचानता हूँ।
पर, सरोवर के किनारे कंठ में जो जल रही है,
उस तृषा, उस वेदना को जानता हूँ।
आग है कोई, नहीं जो शान्त होती,
और खुलकर खेलने से भी निरंतर भागती है।"

पुरूरवा उस अंकुश को पहचानता नहीं है, यद्यपि उसका यह कथन असत्य है क्योंकि वह पहले ही कह चुका है कि—

"यह सब उनकी कृपा, सृष्टि जिनकी निगूढ़ रचना है।
झुके हुए हम धनुष-मात्र हैं, तनी हुई ज्या पर से,
किसी और की इच्छाओं के बाण चला करते हैं।"

सृष्टिकर्त्ता की इच्छा तथा प्रस्तुत अंकुश, दोनों पर्याय हैं। तो, यह अंकुश एक शक्ति है, और वह आग जो न शान्त होती है और न खुल कर खेलती ही है, दूसरी शक्ति है। उर्वशी ने मनुष्य के उक्त अन्तर्द्वन्द्व को इसी अंकुश का परिणाम बताया है जबकि पुरूरवा ने अपनी श्रेष्ठतर बौद्धिकता में अंकुश तथा आग का द्वन्द्व उपस्थित किया है। किन्तु, यह 'आग' क्या है, इसकी खोज होनी चाहिए।

२ उ०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सबसे पहली बात यह है कि इस आग का धर्म है न शान्त होना, न खुल कर खेलना। पुरूरवा आगे कहता है कि उसके भीतर एक पुकार उठती है कि चन्द्रमा को पकड़ कर निचोड़ो और वह सुधा पी जाओ। यह पुकार "रूप का रस-मय निमंत्रण" है या उसके ही "रुधिर की वह्नि" है। वस्तुतः यहाँ भी दूसरा द्वन्द्व आ गया है जो कृत्रिम है। रूप का निमंत्रण रुधिर की वह्नि के अभाव में कोई अर्थ नहीं रखता। मूल वस्तु है रक्त की आग जिसकी ज्वाला ही रूप-रस की आहुति का सम्मान कर सकती है तो, इस प्रकार, उक्त द्विधर्मी अग्नि "रुधिर की वह्नि" ही ठहरती है। यह आग रूप के आसव का पान करने के लिए पुरूरवा को अनुप्राणित करती है। किन्तु, घूँट दो घूँट पीने के बाद ही, किसी अतल से यह नाद आता है—

"अभी तक भी न समझा ?
दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।"

यह झटिति कहा जा सकता है कि अतल का यह नाद अन्तरात्मा की पुकार है जो अन्यत्र बँधी हुई है। इस पुकार की चेतावनी पर उमंगें टूट पड़ती हैं, भुजाओं का बन्धन शिथिल हो जाता है। पुरूरवा पुनः उसी उद्विग्न चिन्तन, उसी चिरंतन पृच्छा से आक्रान्त हो जाता है।

"रूप की आराधना का मार्ग
आलिंगन नहीं तो और क्या है ?
स्नेह का सौन्दर्य को उपहार
रस-चुम्बन नहीं तो और क्या है ?"

पुरूरवा की यह पृच्छा उसकी बौद्धिक उद्वेलना की प्रसूति है जिसमें "रक्त की उत्तप्त लहरों की परिधि के पार" वर्तमान किसी सत्य की खोज की मंद छटपटाहट दिखाई पड़ती है। अस्तु; वह उपर्युक्त आग रक्त की आग है जो रूप-माधुरी के निरंतर पान की कामना से ज्वलनशील रहती है, जो निरंतर खुल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर खेलने के लिये धधकती रहती है। ऐसी स्थिति में पुरूरवा का पूर्व कथन जिसमें उसने इस आग का परिभाषण किया है— "आग है कोई, नहीं जो शान्त होती; और खुल कर खेलने से भी निरंतर भागती है"—गलत एवं अ-यौक्तिक है। वस्तुतः इन पंक्तियों में वर्णित आग पुरूरवा का अन्तर्द्वन्द्व है जिसे कवि अपनी गहन बौद्धिकता की आँच में सही-सही पकड़ नहीं सका है। उसके मानस में यह संकोचशील आग तथा "मेरे ही रुधिर की वह्नि" दोनों एक ही हैं; किन्तु, पुरूरवा के अन्तर्द्वन्द्व को जब वह अपना अन्तर्द्वन्द्व बना लेता है, तब वह इस आग को पलायन-शील बताता है और अपने ही रुधिर की वह्नि के प्रकृत शील का गलत परिभाषण कर बैठता है। पुरूरवा की चिरंतन पृच्छा का उत्तर स्वीकारात्मक होगा, नहीं हुआ तो होना चाहिये। प्रस्तुत पंक्तियाँ—"रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं तो और क्या है ? स्नेह का सौन्दर्य को उपहार रस-चुम्बन नहीं तो, और क्या है ?"—सम्पूर्ण कविता के प्राण हैं। ये बार-बार भावक के मनस्पटल पर अनायास तैरने लगती हैं और देर तक इनकी ध्वनियाँ उसके भीतरी स्तरों में गूँजती रहती हैं।

पुरूरवा की पृच्छा का जो उत्तर हमने ऊपर निर्दिष्ट किया है, वह पुरूरवा की अपनी निर्भ्रान्त प्रतीति नहीं बन सका है। वह व्योम में उड़ कर समाधान खोजता है कि इतने में उसे मही का परिचित गान पुनः सुनाई पड़ जाता है—

"हम वही जग हैं जहाँ पर फूल खिलते हैं।
दूब है शय्या हमारे देवता की,
पुष्प के वे कुंज मंदिर हैं।

जहाँ शीतल, हरित, एकान्त मंडप में प्रकृति के,
कंटकित युवती-युवक स्वच्छन्द मिलते हैं।"

पृथिवी तथा स्वर्ग के अनुरोधों का प्रस्तुत संघर्ष समझ में आता है और अपने शुद्ध रूप में पाठक को आकर्षित भी करता है। लेकिन, कवि यहाँ पुनः उसी पूर्वोक्त कृत्रिम द्वन्द्व के शासन में चला आता है और पूछता है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"गीत आता है मही से ?
या कि मेरे ही रुधिर का राग
यह उठता गगन में ?"

'रूप का रसमय निमंत्रण' और 'रुधिर की वह्नि' का द्वन्द्व ही इन पंक्तियों में पुनः गूँज उठा है। वास्तविक संघर्ष है पृथ्वी तथा स्वर्ग में, रुधिर के राग तथा अतल के नाद में। लेकिन, कवि रह-रह कर जो मही के गीत तथा रक्त के राग में द्वन्द्व की सृष्टि कर देता है, वह उसकी मानसिक उलझन की प्रसूति है और पाठक को भी मानसिक उलझन में डाल देता है। क्या रुधिर की आग को अतल के नाद का पर्याय मानता है ? ऊपर उद्धृत अतल के नाद, "दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है," में 'रक्त के भोजन' का उल्लेख कर, कवि ने एक प्रकार से रुधिर की अग्नि का प्रत्याख्यान किया है। क्या रक्त का भोजन वही नहीं है जिसकी आग रुधिर में जला करती है ? रुधिर की अग्नि की व्यंजना नितान्त स्पष्ट है। इस दृष्टि से, रक्त का भोजन भी सजातीय होना चाहिए। लेकिन, कवि रक्त के भोजन की भावना भिन्न रीति से करता प्रतीत होता है जिससे उसका गोत्रीय सम्बन्ध अतल के नाद से स्थापित हो जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि ने रुधिर की आग के निरूपण में प्रचुर असंगति तथा उलझन उत्पन्न कर दी है।

आगे की पंक्तियों में साकार से शून्य और शून्य से साकार में संचरण करते रहना ही पुरूरवा का भाग्य बन गया है। अतल नाद के आह्वान पर वह साकार की उष्ण भूमि छोड़ कर, शून्य अथवा निराकार के शीतल, निष्प्राण संसार में संक्रमण कर जाता है। वहाँ फिर उसके रुधिर का राग पूर्वास्वादित सुखों की स्मृतियों से उद्वेलित हो उठता है, कामनाएँ प्राणों को हिलकोरती हैं, चुम्बन के चिह्न त्वचा में जग पड़ते हैं और वह, युद्ध से पलायित वेदना-विह्वल युवक के समान, सीधे तीर-सा प्रिया की गोद में जा गिरता है तथा नींद की स्तब्धता में, बालकों-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा मुँह छिपा कर, उसके कोमल वक्ष में डूब जाता है। लेकिन, जग कर फिर पाता है कि कामनाओं की वर्तिकाएँ पूर्ववत् आकुल भाव से जल रही हैं और चेतना रस की लहर में डूब जाती है'[1] इसके बाद, कवि ने पुरूरवा की प्रेम-समाधि को चित्रित किया है जो नितांत गंभीर एवं उन्मीलक है—

"और तब सहसा
न जाने, ध्यान खो जाता कहाँ पर।
सत्य ही, रहता नहीं यह ज्ञान,
तुम कविता, कुसुम या कामिनी हो।
आरती की ज्योति को भुज में समेटे
मैं तुम्हारी ओर अपलक देखता एकान्त मन से
रूप के उदगम अगम का भेद गुनता हूँ।
साँस में सौरभ, तुम्हारे वर्ण में गायन भरा है,
सींचता हूँ प्राण को इस गंध की भीनी लहर से,
और अंगों की विभा की वीचियों से एक हो कर
मैं तुम्हारे रंग का संगीत सुनता हूँ।"

जब चेतना रस की लहर में डूब जाती है, तभी पुरूरवा को उर्वशी के दिव्य, अव्याख्येय स्वरूप की अनुभूति होती है: "कविता, कुसुम या कामिनी हो।" वह उस 'आरती की ज्योति' को भुजाओं में लपेटे हुए, ध्यानमग्न चित्त से उस अलौकिक रूप के अगम्य उद्गम के रहस्य के विषय में सोचने लगता है। वह उसकी साँस की गंध-लहरों से प्राणों को सींचता है और उसके अंगों की प्रभा की मधुर ऊर्मियों से तदाकार, उसकी तन-द्युति का संगीत सुनने लगता है। जैसा मैंने अभी तनिक पूर्व कहा है, मैं संयोग की उसी भाव-दशा को 'प्रेम-समाधि' मानता हूँ, वह कवि की "दुर्गम समाधि" भले न हो।

पुरूरवा समाधि की इस अवस्था में रहस्य-प्रेरित होकर, आकाश में क्षण-भर डूबना चाहता है, किन्तु, 'रस के आमोद' में उसकी चित्त-वृत्तियाँ इतनी थक गई हैं कि वह पुनः "कुसुम

---

१. 'उर्वशी', पृष्ठ ५१–५२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की गोद" में गिर पड़ता है। पुरूरवा हत-बुद्धि है। वह अपने को "मर्त्य मानव का सूर्य" समझता है। तो भी, रूपसी रमणी के वंकिम नयन उसे वेध देते हैं; वह उर्वशी के हाथ का लीला-कमल बन गया है और उसके वक्ष पर सिर रखे मरना चाहता है। प्रेम अपनी लपेट में गात्र पर ही शासन नहीं करता, अपितु प्राणों को भी नियंत्रित करता है। इसीलिए, उर्वशी के भुज-पाश में पुरूरवा का शरीर ही बन्दी नहीं है, अपितु यहाँ "मेरे व्यग्र व्याकुल प्राण भी विश्राम पाते हैं।" कई पदों में कवि ने नर के शोणित में धधकने वाली ज्वाला अथवा अग्नि का उल्लेख किया है और "वह्नि के बेचैन" इस "रस-कोष" की पीठिका में देवत्व-प्राप्ति की अपनी अभिलाषा की पूरणीयता पर पुरूरवा द्वारा संदेह व्यक्त करवाया है। पुरूरवा विवशता का अनुभव कर रहा है और उसी विवशता की मनःस्थिति में वह उर्वशी के रक्त-कणों में समा कर, प्रार्थना के गीत गाना चाहता है।[1]

पुरूरवा की जो विवशता है उसे ही उर्वशी उसके मनुजत्व का पारिभाषिक धर्म निरूपित करती है: "तू पुरुष तभी तक, गरज रहा जब तक यह वैश्वानर।" नाना भाव से उसने इस 'पावक' के महत्त्व का व्याख्यान किया है और "बुद्धि के चिन्तन को "शोणित के अनुभव की तुलना में हीन प्रतिपादित किया है तथा रक्त की भाषा की विश्वसनीयता का आग्रह किया है—

"पढ़ो रक्त की भाषा को, विश्वास करो इस लिपि का;
यह भाषा, यह लिपि मानस को कभी नहीं भरमायेगी।"

ये पंक्तियाँ आंग्ल कवि कीट्स के 'हृदय-रागों की पवित्रता' (Holiness of the heart's affections) के कथन का स्मरण कराती हैं। इसी रक्त की भाषा को पढ़ कर, दुष्यन्त ने शकुन्तला को प्रणय-पाश में बन्दी बना लिया था—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।"
(अभिज्ञानशाकुंतल)

---

१. वही, पृष्ठ ५४—५५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रक्त की लिपि के पढ़ने के उद्बोधन के उत्तर में पुरूरवा ने प्रेम की ऊर्ध्वगामिता का उपदेशक की भंगी में निरूपण किया है। उसकी उपपत्तियों का सारांश यह है: 'मनुष्य जन्मना दिव्य एवं लोकोत्तर है। रक्त की प्रबलता के कारण वह अपने मूल उत्स अव्यय सविता तक पहुँच नहीं पाता। किन्तु, उसे अम्बर की उस ऊँचाई तक उठना होगा जहाँ उसकी दिव्य किरणों का मृत्तिका-विहार उसे हीन लगेगा। प्रेम दाह-मात्र ही नहीं, अमृत-शिखा भी होता है। प्रेम की जन्म-भूमि देह है, किन्तु उसकी लीला-भूमि मन के गहन गुह्य लोकों में प्रसारित होती है। पुरुष नारी के मुख-मंडल में किसी दिव्य अव्यक्त कमल की ज्योति को नमस्कार करता है। प्रणय पहले कठोर मिट्टी है, तब वह वायव्य गगन भी बन जाता है। उर्वशी ने पुरूरवा के भीतर किसी रहस्य-चिन्तक को जगा दिया है जो उस आकाश में उड़ना चाहता है जिसमें उर्वशी की प्रभा-ऊर्मियाँ अलक्ष्य रूप से समा रही हैं, जिसकी निर्विकल्प सुषमा में नर एवं नारी किसी एक ही मूल सत्ता के प्रतिमान हैं। तन के अतिक्रमण से हम द्युतिमान् मनोमय जीवन को प्राप्त कर सकते हैं, उस अदृश्य जगती के दर्शन कर सकते हैं जहाँ मिट्टी की सीमा शून्य में विलीन हो जाती है। अशेष सुंदरी उर्वशी परमात्मा की विराट् छवि का एक अंश-मात्र है। देह और आत्मा की खाई अनुल्लंघ्य नहीं है। आलिंगित नर-नारी का देह-धर्म से अन्तरात्मा के लोक में उठ जाना श्रेयस्कर है क्योंकि दैहिक अनुरोधों की अतिक्रान्ति उस कैलास-लोक में पहुँचना है जहाँ प्रत्येक पुरुष शिव है और प्रत्येक नारी शक्ति-दायिनी शिवा है।'[1]

प्रेम के ऊर्ध्वगामी शील का यह व्याख्यान अपने में, प्रसंग-बाह्य रूप में, अतीव सुन्दर एवं उदात्त है। यदि पुरूरवा से अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति ने प्रणय की गगन-धर्मी वृत्ति का उपदेश दिया होता, तो हमें उस पर कोई आपत्ति नहीं होती। यदि पुरूरवा जिसके निसर्ग में ऊपर उठने की प्रवृत्ति की छट-

१. वही, पृ० ६१–६५।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पटाहट के प्रमाण पहले ही मिल चुके हैं, इस उद्बोधन से बिलकुल बदल गया होता, तब भी हमें कोई शिकायत नहीं होती। किन्तु, यहाँ स्थिति एक-दम भिन्न है। रक्त की लिपि पढ़ने के उर्वशी के आग्रह का यह प्रत्युत्तर (रेस्पांस) अनाहूत-सा लगता है। रुधिर की अग्नि की शक्तिमत्ता का कथन करने वाला व्यक्ति, अधिक-से-अधिक, प्रतिक्रिया-स्वरूप, उस पावक की कदर्थना की मनोमुद्रा को अंगीकार कर सकता था जो स्वाभाविकता की सीमा के अतीत नहीं होता। लेकिन, स्वस्थ-चित्त से, दार्शनिक की भंगिमा में प्रणय के उन्नयन एवं ऊर्ध्वग स्वरूप का वह निरूपण करे—यह सर्वथैव कृत्रिम-सा प्रतीत होता है। कवि ने अपनी अर्ध-पाचित मान्यताओं को पुरूरवा के मुख में रख कर, 'उर्वशी' के कलात्मक महत्त्व को आघात पहुँचाया है।

बाद के आठ-दस पृष्ठों में हिम-भूषित गिरि शृंगों से विच्छुरित ज्योत्स्ना की माया का उर्वशी और पुरूरवा ने, भिन्न-भिन्न बिम्बों की अवतारणा कर मोहक वर्णन किया है। इस संदर्भ में पुरूरवा स्वप्नों की जननी विभावरी का अभिनन्दन करता है क्योंकि चन्द्रिका की अगाध सुषमा उन्हें अनन्तता की प्रशान्त धारा में निश्चेत कहीं बहवाते चली जा रही है। उर्वशी और पुरूरवा दोनों समय-सरिता के प्रवाह को रोक रखना चाहते हैं जिससे वे अखंड शान्ति का उपभोग कर सकें। उर्वशी का कथन है कि उस शान्त-स्निग्ध चन्द्रिका में वे विराट काल-महार्णव में तैर रहे हैं, उनके हृदयों की धड़कनें अव्याहत भाव से समस्त विश्व में समा रही हैं। उनके अन्तर्मन का यह बाह्य प्रसार घटित हो रहा है।[1] संयोग की प्रगाढ़ अवस्था में प्रणयिजन सम्पूर्ण सृष्टि में अपने हृदयों की अ-मुखर भाषा का ध्वनन सुनें—यह नितांत नैसर्गिक एवं उद्बोधक है। मनो-विज्ञान भी इस सत्य का अनुमोदन करता है और इसे 'एम्पैथी'

---

१. वही, पृ० ६९–७०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प० १८६८ वा.वि.पु.

(Empathy) की आख्या प्रदान करता है। उर्वशी पूछती है: 'इस सृष्टि की महिमा को हम कहाँ समेट कर रखें?' इस प्रश्न के उत्तर में पुरूरवा कहता है: 'इस सुख को उस अद्वैत-भवन में रखो जहाँ पहुँच कर दिक् और काल एक हो जाते हैं; इस प्रदीप्त विश्व के अंचल में रखो जो इसी प्रकार प्रणय का गूढ़ कूजन सुनता जाएगा; उस अ-दृश्य के चरणों पर रखो जिसकी मृदु स्मृति में हम दोनों क्रीड़ा-विहार करते हैं, जो स्वयं नारी बनकर पुरुष को और पुरुष बन कर नारी को उद्वेलित किया करता है।'[1] आगे पुरूरवा कहता है:'प्रयण के आलिंगन में शिथिल देह नहीं बँधती, यही विभा बँधती है और मद-विभोर अधरों का चुम्बन इसी अदृश्य के चरणों में चढ़ता है। देह मिट्टी है, किन्तु दैहिक प्रकाश की किरणें मिट्टी नहीं हैं। अधर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु चुम्बन की झनकार नहीं मिटती। अतएव, सारे आकारों में जमने वाले निराकार के चरणों में ही प्रणय की तरंगें अर्पित होती हैं।'[2]

पुरूरवा का यह कथन भी दार्शनिक भणिति के आस्वाद से मंडित है। अदृश्य एवं अद्वैत को मनुष्य के समस्त प्रणयोपचार का आदाता एवं आधायक बताया गया है, नर एवं नारी के पारस्परिक आकर्षण को उसी का उसी के प्रति आकर्षण कहा गया है। उपनिषद् का निर्देश कि रमणेच्छा से अनुप्राणित परमात्मा ने अपने को नर-नारी के द्वैत में विभक्त कर लिया, पुरूरवा के प्रस्तुत व्याख्यान में प्रतिफलित हुआ है। चुम्बन की झनकार के नहीं मिटने का कथन कर, प्रणय को उसी अविनश्वर मौलिक सत्ता का विलास बताया गया है। स्पष्ट ही, पार्थिव प्रेम का प्रस्तुत अपार्थिवीकरण दार्शनिक मनोदृष्टि का परिणाम समझा जाएगा। तथापि, यह सम्पूर्ण प्रकरण बाह्यारोपित, सायास नियोजित नहीं आभासित होता। प्रणयानुभव के जिस मनोरम धरातल पर उर्वशी-पुरूरवा पहुँच गए हैं, उनके प्राणों की परिधि जैसे टूट गई है, उसे ध्यान में रखते हुए,

---

१. वही, पृ० ७१। २. वही, पृ० ७१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि वे प्रणय को उस सृष्टि-विधायक परम सत्ता के प्रकाश से अभिन्न समझते हैं, तो इसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं है। अतएव, यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हम प्रणय में दार्शनिकता-मात्र के समावेश के विरोधी नहीं हैं, अपितु उस प्रसंगातिरिक्त दार्शनिकता के विरोधी हैं जो ऊपर से थोपी गई है, जो कवि के मन्तव्य-विशेष की परिपुष्टि के हेतु सायास नियोजित है, जो इसी कारण उपदेशात्मकता के रंगों में भींगी दिखाई पड़ती है। ऐसी दार्शनिकता को मैं प्रणय-काव्य की 'पैथॉलॉजी' के रूप में देखता हूँ।

तो, आलिंगन-बद्ध प्रेमानुभूति की इस मनोदशा में पुरूरवा और उर्वशी, विशुद्ध दैहिक संवेदनों की परिधि अतिक्रान्त कर, ऐसे संसार में पहुँच गए हैं जहाँ 'स्वप्नों की ज्वाला' में सत्य का अर्थ जला जा रहा है और 'आकारों की पृथिवी' निराकार में डूबी जा रही है। पुरूरवा का यह कथन पूर्णतः सही है। वह सुख अगोचर है, "गूँगे का स्वाद" है। प्रणय-प्रज्वलित हृदय में जो अनेक झंकृतियाँ उठती हैं, उन्हें सिद्ध-समर्थ प्रेमी भी शब्दों की सीमा में बाँध नहीं पाते : "भाषा रूपाश्रित, अरूप है यह तरंग प्राणों की।" जहाँ पुरूरवा प्रेमानुभूति की इस अतीन्द्रिय समाधि का कथन करता है, वहाँ वह निश्चय ही श्लाघ्य है; किन्तु जब वह अतीन्द्रियता को किसी रहस्यमयी अलौकिक सत्ता से जोड़ देता है, वहाँ वह कृत्रिम दार्शनिक मोह का आखेट बन जाता है। वस्तुतः दिनकर ने अतीन्द्रिय को अद्वैत परमात्मा का पर्याय समझ लिया है, और यही 'उर्वशी' का दुर्बलतम तत्त्व है।

'प्राणों की उक्त तरंग' का व्याख्यान करने के बाद उस 'अगोचर सुख' की मनोधारा खंडित हो गई है। उर्वशी का यह प्रश्न, "कौन पुरुष तुम ?" कृत्रिम प्रतीत होता है। यह प्रश्न इसीलिए कराया गया है कि कवि पुरूरवा के माध्यम से यह विचार प्रस्तुत कर सके कि : "मैं वह पुरुष हूँ जो मरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को बारम्बार तैर कर, तुम्हें कल्पों के अँधियाले में खोजता फिरा" इत्यादि। इसी प्रकार, उर्वशी का यह पूछना भी कृत्रिम है: "और कौन मैं ?" किन्तु इस प्रश्न के उत्तर में पुरूरवा ने जिन प्रेमानुभूतियों का वर्णन किया है, वे नितान्त सुन्दर एवं परिचित हैं। प्रेमियों के मधुर मिलन में धरती की अर्थवत्ता कैसे बदल जाती है, इसका रमणीय चित्र कवि ने अंकित किया है।[1] उर्वशी ने भी अपनी अनुभूतियों का वर्णन किया है तथा पुरूरवा के ज्योतिर्मय रूप को किसी 'कनक-पर्वत' से प्रकृति द्वारा काटी हुई 'विराट् पुरुष-प्रतिमा' बताया है। पुरूरवा की रूप-माधुरी एवं उसकी कठोर भुजाओं में सिमटने से जनित प्राणों की उन्मत्तता का भी वह कथन करती है जो एकदम सटीक एवं स्पृहणीय है: "मैं पुलकित-विह्वल, प्रसन्न-मूर्च्छित होने लगती हूँ।" किन्तु, उर्वशी की प्रणयानुभूति की प्रस्तुत स्वीकृति कवि की दार्शनिक भंगिमा से बीच-बीच में बाधित हो गई है, यथा—

"स्यात् दिखाने को धरती जब महावीर जनती है,
असुरों से भी बली, सुरों से भी मनोज्ञ होता है।"
"कितना है आनन्द फेंक देने में स्वयं-स्वयं को,
पर्वत की आसुरी शक्ति के आकुल आलोड़न में !"

'असुर' और 'आसुरी' का उल्लेख यहाँ पूर्णतः अनावश्यक है। कवि की अंग्रेजी पदावली को अनूदित करने की प्रवृत्ति भी खटकने वाली है। उर्वशी का यह कथन, "तुम मेरे प्राणेश, ज्ञान-गुरु, सखा, मित्र, सहचर हो", अंग्रेजी के 'Philosopher friend and guide' का परिवर्धित रूपान्तर है जो प्रस्तुत संदर्भ में बिलकुल असंगत, अनावश्यक एवं अनुपयुक्त सिद्ध होता है। इस वाक्य के पहले और बाद की पंक्तियाँ देखिए—

"और मिले जब प्रथम-प्रथम तुम, विद्युत् चमक उठी थी"

---

१. वही, पृ० ७५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा

"जहाँ कहीं भी प्रणय सुप्त था शोणित के कण-कण में,
तुमने उसको छेड़ मुझे मूर्च्छा से जगा दिया है।"

स्पष्ट है कि विद्युत् के चमक उठने और रक्त के कण-कण में सुप्त प्रणय के जाग्रत हो जाने के बीच में 'ज्ञान-गुरु' तथा 'सखा-सहचर' का उल्लेख व्यर्थ का वाग्विलास है।

जैसा अभी कहा गया है, उर्वशी-पुरूरवा के प्रणयानंद का मनोरम धरातल जिसे कवि ने 'गूँगे का स्वाद' कहा है, उर्वशी के प्रथम प्रश्न "कौन पुरुष तुम ?" के साथ विनष्ट हो गया है। उर्वशी तथा पुरूरवा के प्रणय-मिलन की मधुर-उदात्त अनुभूतियों का जो चित्रण किया गया है, उसे छोड़ कर शेष प्रसंग में कविता की सौदामिनी की कौंध के दर्शन नहीं होते। उर्वशी के मुख में जो लम्बा दार्शनिक कथन, दस पृष्ठों, का रख दिया गया है[1] वह 'सुविचारित' भले कहा जाय, भावक की दृष्टि से 'अविचारित-रमणीय' की प्रकृति पर प्रत्यक्ष आघात पहुँचाता है। प्रकृति एवं परमेश्वर की एकतानता को निरूपित करने के निमित्त जो कथन उर्वशी ने किये हैं, वे केवल 'प्लैटिच्यूड्स' (Platitudes) हैं जिनमें न कोई गंभीरता है, न गहन चिन्तन है, न प्रेम की शक्ति एवं मधुरिमा का कोई उन्मीलन। कम-से-कम 'अभुक्त प्रेम की इस जीवित प्रतिमा' को तो दार्शनिक शेरवानी नहीं पहनानी चाहिये थी। उर्वशी के लम्बे कथन का सारांश यों दिया जा सकता है—

परमेश्वर प्रकृति का शत्रु नहीं है। परमेश्वर तक पहुँचने के लिये प्रकृति के सम्बन्धों को तोड़ना आवश्यक नहीं है। नारी को आलिंगन में बाँधने वाला नर अथवा नर से परिचय प्राप्त करने वाली नारी परम तत्त्व का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकती, यह समझना भ्रान्तिपूर्ण है। प्रकृति माया नहीं है, वह बुद्धि माया है जो अर्जन-वर्जन का भेद सिखाती है। प्रकृति में द्वैत नहीं है,

१. वही पृष्ठ ७७–८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह मन की सृष्टि है। राग-विराग दोनों से निश्चिन्त होकर, चेतना के प्रवाह को बहने देना चाहिए। परमात्मा विधि-निषेधों से साध्य नहीं है। फलासक्ति-विहीन मनुष्य ही जो प्रकृति से एकाकार होकर, निष्काम कर्म-धारा में बहता रहता है, शान्ति एवं आनन्द प्राप्त कर सकता है। जब मन तथा इन्द्रियाँ सहज, शान्त मुद्रा में अपने वातायन खोले रहती हैं, तभी निष्कलुष मोद की किरण उतर आती है। अर्जन-वर्जन की सीमा में बँधा व्यापार निष्काम वा निरुद्देश्य नहीं हो सकता। प्रकृति से समर रोप कर, इन्द्रियों के ऊपर तलवार उठाने वाला व्यक्ति किस कल्पित सुख का मूल्य चुका रहा है? मूर्ख मनुज यह नहीं जानता कि वह स्वयं प्रकृति है, कि प्रकृति से पलायन कर वह कहीं त्राण नहीं पा सकता। परिवर्तन के प्रवाह में हाथ-पैर चलाना व्यर्थ है, केवल उसमें निष्काम भाव से बहते जाना ही श्रेष्ठ है। एक ही अरूप सत्ता जल, कमल एवं कर्दम सबमें व्याप्त है। श्वेत-श्याम एक ही रंग की युगपत् संज्ञाएँ हैं। प्रकृति और ईश्वर में गुणों का भेद नहीं दृष्टि-मात्र का भेद है। इस धरती पर काम-धर्म उज्ज्वल उदाहरण है। काम ही धर्म तथा पाप दोनों का मूल है। वे सभी काम-कृत्य दुष्ट हैं जिनके सम्पादन में मन तथा आत्माएँ नहीं, केवल दो शरीर मिला करते हैं या जहाँ शरीर प्रकृति के विरुद्ध विवश किया जाता है। शरीर का कोई अपराध नहीं है; वह तो प्रकृति का सुकुमार यन्त्र है। मन ही समस्त विपदों का मूल है। तन का काम अमृत है जबकि मन का काम गरल है। फलासक्ति जैसे कर्मों को दूषित कर देती है वैसे ही वे काम-कृत्य भी दूषित हैं जो सहज स्फूर्तिभ होकर, मानसिक क्षुधा के तृप्त्यर्थ किये जाते हैं। निष्काम काम-सुख इसीलिए स्वर्गीय पुलक है। पुत्र-कामना भी निष्काम काम-सुख का ध्येय नहीं है। हमें मुक्ति नहीं चाहिए। जब तक प्रकृति शेष है, तब तक हम भी लीला-मय की सहज-शान्त धारा में बहते जाएँगे।

उर्वशी के प्रस्तुत निरूपण में वेदान्त का अद्वैत-तत्त्व, गीता का अनासक्ति-तत्त्व, उमरखैयाम का भोग-तत्त्व, अस्तित्ववादियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की निस्सहायता तथा मनोविज्ञान का सहज लैंगिक आकर्षण ये सभी सजातीय-विजातीय द्रव्य परस्पर मिल कर, एक विचित्र वर्ण संकरी दर्शन की सृष्टि करते हैं जिसके लिये कवि को नवीन स्थापना का श्रेय तो मिल सकता है, किन्तु भावक को सुपाच्य भावात्मक भोजन भी उससे मिलेगा; इसमें घोर सन्देह है। पुनः इस प्रसंग में मन के दूषणों का कथन कर तथा तन के अमृतोपम महत्त्व का निरूपण कर, कवि ने पाठक को भूल-भुलैया में डाल दिया है—स्मरण रखें कि वह अभी-अभी देह के मन के ऊर्ध्व लोक में विलीन होने की प्रशस्ति गा चुका है।[1] फिर, तन और मन के आपेक्षिक महत्त्व की सही-सही भावना भी वह, इन पंक्तियों के दौरान में; पाठक को नहीं करा सका है। ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"काम-कृत्य वे सभी दुष्ट हैं, जिनके सम्पादन में,
मन-आत्माएँ नहीं, मात्र दो वपुष् मिला करते हैं।
या तन जहाँ विरुद्ध प्रकृति के विवश किया जाता है
सुख पाने को, क्षुधा नहीं, केवल मन की लिप्सा से

× × × ×

तन का क्या अपराध ? यंत्र वह तो सुकुमार प्रकृति का,
तन का काम अमृत, लेकिन, यह मन का काम गरल है।

एक बार तन-मिलन को 'दुष्ट' बताना और दूसरी बार तन के काम को 'अमृतोपम' बताना, एक बार मन-मिलन को श्रेष्ठ बताना, और दूसरी बार मन के काम को 'गरल' बताना—यह सामान्य पाठक के लिए पहेली की ही सृष्टि करता है। वास्तव में, प्रणय-पुत्तलिका उर्वशी को कवि-द्वारा दार्शनिक चिन्तन के धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास विफल सिद्ध हुआ है जैसा होना चाहिए था। एक बात और लक्षणीय है। प्रकृति एवं

---

१. "देह डूबने चली अतल मन के अकूल सागर में,
किरणें फेंक, अरूप रूप को ऊपर खींच रहा है।"
"चढ़े हुये हम देह छोड़ कर मन में पहुंच रहे हैं।" (पृ० ७३)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परमेश्वर की अविरुद्धता का इतना विस्तृत निरूपण खटकता है; अभिधा की अतिशयता ने प्रस्तुत प्रकरण के सौन्दर्य को विनष्ट कर दिया है। यदि कवि ने अपने विवक्षितार्थ की विवृति के निमित्त व्यंजना अथवा संक्षिप्त कथन का आश्रय लिया होता, तो शायद उसे अपने उद्देश्य में तनिक सफलता मिल गई होती और वह काव्य-सुलभ शील से स्खलित भी नहीं हुआ होता। 'निष्काम काम-सुख' की उसकी 'थीसिस' भी गले के नीचे नहीं उतरती—

"इसी लिए, निष्काम काम-सुख वह स्वर्गीय पुलक है,
सपने में भी नहीं स्वल्प जिस पर अधिकार किसी का।
नहीं साध्य वह तन के आस्फालन या संकोचन से;
वह तो आता अनायास, जैसे बूँदें स्वाती की
आ गिरती हैं, अकस्मात्, सीपी के खुले हृदय में।
लिया दिया वह नहीं, मात्र वह ग्रहण किया जाता है।"

'यह स्वर्गीय पुलक केवल ग्रहण किया जाता है'—यह कथन उस उर्वशी के मुख में कितना मखौल-जैसा ध्वनित होता है जिसने सखी चित्रलेखा से प्रार्थना की थी—

"कहती हूँ, इसलिए, चित्रलेखे! मत बेर लगाओ,
जैसे भी हो मुझे आज प्रिय के समीप पहुँचाओ।"

दिनकर की प्रतिभा किसी भाव-मूर्ति को पुष्ट करने के लिए अथवा किसी कल्पित भाव को रूपायित करने के लिए उतना ही सफल अथवा असफल प्रयास करती है जितना सफल अथवा असफल प्रयास सु-प्रसिद्ध डॉनक्विक्सोट (Don Quixote) ने हवाई चक्कियों का दमन करने के लिए अतीत में किया था।

बाद के पृष्ठों में उर्वशी द्वारा अपनी महिमा के विज्ञापन तथा पुरूरवा द्वारा उसकी सर्वांशतः स्वीकृति का वर्णन हुआ है। उर्वशी ने अभी जिस 'चिन्तन की हिलोर' को उद्रिक्त किया है, उससे पुरूरवा सर्वथा अभिभूत है, परास्त है। ऐसा भासित होता है जैसे ये प्रणयि-युगल एक-दूसरे को अपनी तर्कना-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिन्तना के द्वारा विजित करने का प्रयास कर रहे हों और अंतिम बाजी उर्वशी के हाथ लगी हो। पुरूरवा मानो थकित मनोमुद्रा में, विधि-निषेधों की व्यर्थता को स्वीकार करता हुआ, सत्य की इस परिभाषा तक पहुँचता है—

"सत्य, स्यात्, केवल आत्मार्पण, केवल शरणागति है,
उसके पद पर, जिसे प्रकृति तुम, मैं ईश्वर कहता हूँ।
एक कर्म, अनुभवन निरंतर उस सुषमा, उस छवि का
जो विकीर्ण सर्वत्र, केन्द्र बन तुममें झलक रही है।"

इन पंक्तियों का प्रतिपाद्य यों रखा जा सकता है : 'मूक, अविगत के संकेतों का अनुगमन प्रकृति है और विश्व-व्यापी सुषमा का अनुभवन ईश्वर है। प्रकृति कर्म है और ईश्वर धर्म है। इस कर्म और धर्म में, मूर्त संकेतों के अनुगमन और सर्वत्रव्यापी सुषमा के अनुभवन में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। अतएव, प्रकृति और ईश्वर में पूर्ण अभेद की स्थिति है। इसी प्रकृति तथा ईश्वर के चरणों में आत्मार्पण कदाचित् सत्य है।'

अतएव, कवि ने इस सत्य को दो रूपों में देखा है। प्रथम, मनोविश्लेषणीय अचेतन के रूप में तथा द्वितीय, अद्वैतदर्शी रहस्यवादियों के 'लाल की लाली' के रूप में। यदि मनोविश्लेषणीय सत्य के हमारे कथन से आपको असहमति हो, तो निम्नोल्लिखित पंक्तियाँ देखें—

"विधि-निषेध, सत्य ही स्यात्, जल पर की रेखाएँ हैं,
कोई लेख नहीं उगता भीतर के अगम सलिल पर।
और जो भी उठता ऊपर अवचेत-अतल से,
विधि-निषेध का उस पर कोई जोर नहीं चलता है।"

'मूक अविगत के संकेतों' और 'अवचेत—अतल के अगम सलिल, दोनों की जाति एक ही है। अचेतन मन की सहज क्रियाएँ जिन पर साधारणतया चेतन मन का अंकुश नहीं रहता, कवि की दार्शनिक भणिति में 'मूक अविगत के संकेत' बन गई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। अर्थात्, अंतिम विश्लेषण में, फ्रायड एवं कबीर दोनों सजातीय, सगोत्रीय बन गए हैं। कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा के लिए विरोधियों की यह मैत्री विस्मयजनक नहीं है। लेकिन, सामान्य काव्यानुरागी भावक की अपनी पसंद यही थी कि प्रकृति-परमेश्वर का लोक-सुलभ सनातन द्वैत बना रहने दिया जाता। प्रकृति के 'कर्म' का उपभोग कर यदि ईश्वर के 'धर्म' की भावना की गई होती, तो बात दूसरी हो जाती। एक अभिनव दर्शन की सृष्टि की पूर्वचिन्ता ने कवि से तर्कना का वह ग्रंथि-जाल तैयार करा दिया है जिसे देख कर, पुरूरवा के ही शब्दों में, इस विराट् मेधा की प्रस्तुत परिणति हमारे भीतर से विस्मय की यह ध्वनि निकालती है—

"तपःपूत नर के समस्त संचित तप की आभा-सी !"

बाद के ग्यारह पद्यों में पुरूरवा ने उर्वशी के विस्मयोत्पादक "पावक-मय रूप" का वर्णन किया है तथा समुद्र एवं नारायण ऋषि के जंघे के साथ परंपरा द्वारा जोड़े गए उसके जन्म-संबंधों को लेकर, रोमांटिक कल्पनाएँ की गई हैं। उर्वशी के अलौकिक रूप सौन्दर्य के कथन ने कवि को उसके त्रिकालाबाधित अस्तित्व का उल्लेख करने का अवसर प्रदान किया है। इस रूप में उर्वशी एक व्यक्ति-विशेष की प्रेयसी न होकर पुरुषमात्र की आराध्या, एक नारी-विशेष न होकर विश्वनारी तथा एक लोक-विशेष की न होकर त्रैलोक्य को उद्भासित करने वाली ह्लादिनी शक्ति बन गई है : "मेरा तो इतिहास प्रकृति की पूरी प्राण-कथा है।" नारी-शक्ति का वर्तमान निरूपण अत्यंत सुन्दर एवं प्रभाव-शाली है। उर्वशी ने आग्रह किया है कि पुरूरवा उसके सम्पूर्ण रहस्य को जानने का प्रयत्न न करे क्योंकि "दिन की खुली धूप में कब तक जीवन चल सकता है ?" पुरूरवा स्वीकार करता है कि सचमुच उर्वशी 'अदेह कल्पना' है और उसने उसे स्वप्न से भिन्न कभी नहीं माना है। तथापि, वह पूर्ण सत्य की जानकारी के लिए अभिलाषा करता है जिस पर उर्वशी अत्यंत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आवेश में आ जाती है और देश-काल से अतीत अपने नारी-रूप, अम्बर में उड़ने वाली अपनी आनन्दवृत्ति तथा चराचर पर शासन करने वाली अपनी दुर्निवार शक्ति का प्रभविष्णु व्याख्यान करती है।[1] पाँच पृष्ठों में विकीर्ण ये चित्र अत्यन्त आकर्षक एवं कवित्व-पूर्ण हुए हैं और कवि इनमें कहीं शिथिल-समाधि नहीं होने पाया है। निम्नोल्लिखित पंक्तियाँ 'उर्वशी' के प्राण हैं—

"मैं नहीं गगन की लता
तारकों में पुलकित फूलती हुई,
मैं नहीं व्योम-पुर की बाला,
विधु की तनया, चन्द्रिका-संग,
पूर्णिमा—सिन्धु की परमोज्ज्वल आभा-तरंग,
मैं नहीं किरण के तारों पर झूलती हुई भू पर उतरी।
मैं नाम-गोत्र से रहित पुष्प,
अम्बर में उड़ती हुई मुक्त आनन्द-शिखा इतिवृत्तहीन,
सौन्दर्य-चेतना की तरंग;
सुर-नर-किन्नर-गन्धर्व नहीं,
प्रिय ! मैं केवल अप्सरा
विश्व-नर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्भूत।
कामना-तरंगों से अधीर
जब विश्व-पुरुष का हृदय-सिन्धु
आलोड़ित, क्षुभित, मथित होकर,
अपनी समस्त बड़वाग्नि
कंठ में भरकर मुझे बुलाता हैं,
तब मैं अपूर्व-यौवना
पुरुष के निभृत प्राण-तल से उठ कर
प्रसरित करती निर्वसन, शुभ्र, हेमाभ कान्ति
कल्पना-लोक से उतर भूमि पर आती हूँ,

१. 'उर्वशी', पृ० ९४–१००।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विजयिनी विश्व-नर को अपने उत्तुंग वक्ष
पर सुला अमित कल्पों के अश्रु सुखाती हूँ।
जन-जन के मन की मधुर वह्नि, प्रत्येक हृदय की उजियाली,
नारी की मैं कल्पना चरम नर के मन में बसने वाली।

× × ×

कामना-वह्नि की शिखा मुक्त मैं अनवरुद्ध,
मैं अप्रतिहत, मैं दुर्निवार;

× × ×

उड़ते मेघों को दौड़ बाहुओं में भरती,
स्वप्नों की प्रतिमाओं का आलिंगन करती।

× × ×

देवालय में देवता नहीं, केवल मैं हूँ।
मेरी प्रतिमा को घेर उठ रही अगुरु-गन्ध,
बज रहा अर्चना में मेरी मेरा नुपूर।
मैं कला-चेतना का मधुमय, प्रच्छन्न स्रोत,
रेखाओं में अंकित कर अंगों के उभार,
भंगिमा, तरंगित वर्तुलता, वीचियाँ, लहर,
तन की प्रकान्ति रंगों में लिये उतरती हूँ।"

अपने विश्व-व्यापी आकर्षण एवं स्वरूप का आवेश-पूर्ण कथन कर, उर्वशी ने दो हृदयों के मूक मिलन की पावन रस-मय समाधि का अत्यन्त सुंदर वर्णन किया है—

"दो प्राणों से उठने वाली वे झंकृतियाँ गोपन, मधुमय,
जो अगुरु-धूम-सी हो जाती ऊपर उठ एक अपर में लय।
दो दीपों की सम्मिलित ज्योति, वह एक शिखा जब जगती है,
मन के अगाध रत्नाकर में यह देह डूबने लगती है।
दो हृदयों का वह मूक मिलन, तन शिथिल, स्रस्त अतिशय सुख से
अलसित आँखें देखतीं, न कोई शब्द निकलता है मुख से।
कितनी पावन वह रस-समाधि! जब सेज स्वर्ग बन जाती है,
गोचर शरीर में विभा अगोचर सुख की झलक दिखाती है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस रस-समाधि के चित्रण के बाद कवि पुनः उर्वशी की त्रिकाल-व्यापी महिमा का गुणानुवाद करता है—

"मैं देश-काल से परे चिरंतन नारी हूँ।
मैं आत्म-तन्त्र यौवन की नित्य-नवीन प्रभा,
रूपसी अमर मैं चिरयुवती सुकुमारी हूँ।

× × ×

मैं भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त;
मैं विश्व-प्रिया।"

उर्वशी के इन उद्गारों में कवि ने ऐन्द्रिय अनुभूति की स्थूलता को, प्राणों की बुभूक्षा को तथा मनस्लोक की रस-समाधि को एक में मिला कर जिस 'अगोचर सुख' की व्यंजना की है, वह सचमुच 'काम-सुख' की मौलिक पवित्रता पर मधुर आलोक डालता है। वस्तुतः जहाँ कवि 'सौन्दर्य-लहर' में डूब जाता है, वहीं वह उत्कृष्ट सफलता प्राप्त करता है और जहाँ 'चिन्तन की लहरों' के साथ बहने का प्रयत्न करता है, वहाँ सफलता की अप्सरा उसे ललचा कर धोखा दे जाती है। आंग्ल कवि कीट्स के समान, वह मानसिक संघर्ष से ग्रस्त है। एक ओर दर्शन की चोटियाँ उसे लुभाती हैं और दूसरी ओर सौन्दर्य की तरंगें उसे अपने मधुमय आवर्त्तों में बन्दी बना लेती हैं। कीट्स ने अपने मित्र वेली को एक पत्र में लिखा था कि वह विचारों के जीवन की तुलना में संवेदनों के जीवन के प्रति अधिक सहज आकर्षण का अनुभव करता है। "O for a life of sensations rather than of thoughts" और फिर दूसरे पत्र में स्पष्ट स्वीकार किया था कि दार्शनिक चिन्तन का साहस उसे छोड़ देना चाहिए "To philosophise I dare not." 'उर्वशी' के कवि को कीट्स का साहस नहीं है क्योंकि उसने दर्शन की परिपक्वता की मरीचिका से मुग्ध एवं लुब्ध होकर, भावी मनुज-पीढ़ियों के लिए कृत्रिम चिन्मयता की भ्रामक झाँकियाँ सजग भाव से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"Until I grow high-rife
With old philosophy,
And mad with glismpses of futurity."

(Keats)

प्रेम और दर्शन, सौन्दर्य और चिन्तन का पाणिग्रहण कराने का प्रयत्न कविता में असम्भव तो नहीं है, किन्तु अतीव कठिन अवश्य है—कम से कम 'उर्वशी' के रचयिता के लिये तो वह अत्यन्त मँहगा सौदा पड़ा है। 'सातों अम्बर तक उड़ने वाला रूपसी नारी का स्वर्णाञ्चल' उसे कभी धोखा नहीं देता और वह 'प्रेम की नाव' के सहारे सहज ही अपने अभीप्सित 'दिव्य लोक' में पहुँच जाता, यदि वह 'दर्शन-तरंग' की 'माधुरी' में नहीं फँसा होता—

"चिन्तन की लहरों के समान सौन्दर्य-लहर में भी है बल,
सातों अम्बर तक उड़ता है रूपसी नारि का स्वर्णांचल।
जिस मधुर भूमिका में जन को दर्शन-तरंग पहुँचाती है,
उस दिव्य लोक तक हमें प्रेम की नाव सहज ले जाती है।"

उर्वशी का यह कथन स्वयं उर्वशी की दृष्टि से कृत्रिम एवं अनाहूत है क्योंकि अपने आवेशित उद्गारों में, उसने आद्योपान्त विशुद्ध नारी-तत्त्व के चराचर-व्यापी आकर्षण का जो शक्तिशाली व्याख्यान किया है, उसके बीच में ये चार पंक्तियाँ ऐसी आ गई हैं जो रूपसी नारी के स्वर्णाञ्चल को चिन्तन की तुलना में द्वितीय-कोटिक महत्त्व का बताती हैं। कवि इसे न समझ पाया हो, सामान्य पाठक भी न समझ पाएँ—यह दूसरी बात है। 'चिन्तन की लहरों' तथा 'दर्शन-तरंग' के अनपेक्षित उल्लेख से तथा "चिन्तन की लहरों के समान सौन्दर्य-लहर में भी है बल" के 'भी' से नारी-शक्ति की निम्न-कोटि का आभास मिलता है, और प्रस्तुत संदर्भ में, इसी कारण, ये पंक्तियाँ कृत्रिम बन गई हैं। कवि की दृष्टि से ये पंक्तियाँ रस-समाधि में डूबने की उसकी अभ्यन्तरीण क्षमता का अपलाप करती हैं क्योंकि प्रेम के सोये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवता को चुम्बन से जगाने का वह अभी-अभी, ठीक इन पंक्तियों से पूर्व, संकल्प कर चुका है जबकि एक ही क्षण में चिन्तन की लहरें उसे फिर आक्रान्त कर बैठती हैं—

"परिरंभ-पाश में बँधे हुए उस अम्बर तक उठ जाओ रे !
देवता प्रेम का सोया है, चुम्बन से उसे जगाओ रे !
चिन्तन की लहरों के समान सौन्दर्य-लहर में भी है बल।"

'चुम्बन' और 'चिन्तन' के इस अनावश्यक, स्वामंत्रित द्वन्द्व में दिनकर की प्रतिभा 'विश्व-प्रिया' उर्वशी के साथ न्याय नहीं कर सकी है।

(ङ)

चौथे अंक की योजना दो दृष्टियों से की गई है। पहली है- महर्षि च्यवन और सुकन्या के प्रशान्त, गंभीर प्रणय की प्रशस्ति तथा दूसरी है, इस बात की विज्ञप्ति कि गन्धमादन-निवास के फलस्वरूप उर्वशी को आयु नामक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है जिसका पालन-पोषण च्यवन के आश्रम में हो रहा है, भरत के इस शाप से उर्वशी के बचने के लिए कि "पुत्र और पति नहीं, पुत्र या केवल पति पाओगी।" तीसरे अंक की उद्देश्य-बोझिल योजना के बाद, भावक इस अंक में विश्राम की साँस लेता है, कृत्रिम चिन्तन के 'नाइट्रोजन' के बाद हलकी एवं ह्लादमयी संवेदना के स्वस्थ 'आक्सीजन' के संसार में प्रवेश करता है। 'योगी का प्रेम धूप से छाया में आना है"—सुकन्या का सतीत्व इसी छाया में वर्धित एवं परिपोषित हुआ है और इसी लिए, कुमार आयु के लालन-पालन का गुरु-गंभीर दायित्व उसने असीम धैर्य एवं ममत्व के साथ निर्वहण किया है। नर-शोणित में आग लगा देने वाली अप्सरा भी, कदाचित् इसी प्रेम की स्निग्ध, शीतल छाया के संस्पर्श के कारण, सुकुमार मातृत्व के कोमल स्पन्दनों से उद्वेलित हो उठी है—

"कहाँ ? बँधने को प्रिय के आलिंगन में ?"

(सुकन्या)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"उस बन्धन में तो अब केवल तन ही बँधा करेगा;
प्राणों को तो यहीं तुम्हारे घर छोड़े जाती हूँ।"

(उर्वशी)

चित्रलेखा और सुकन्या के संवाद का प्रधान आलम्बन महर्षि च्यवन की वह समन्वय-वृत्ति है जिसने योग तथा भोग को एक समरस भूमि-तल पर प्रतिष्ठित कर दिया है। चित्रलेखा उन तेजवन्त पुरुषों पर गर्व करती है जो तपश्चरण तथा प्रणय-परिपोष, दोनों का समान भाव से परिशीलन करते हैं, जो प्रणय-पाश में बँधे रहने पर भी, आत्यन्तिक सुख की चोटी पर आसीन होते और जिनके नेत्र समाधि-भंग होने पर, 'अंजनवाली आँखों' को पीड़ित नहीं करते। च्यवन ने प्रेम के ऊपर तप का उत्सर्ग कर, केवल सुकन्या को ही नहीं, अपितु संसार भर की सीमन्तिनियों को गौरवान्वित किया है और यह प्रदर्शित कर दिया है कि 'इन्द्रिय-तर्पण' में कोई दोष नहीं है। चित्रलेखा 'प्लैटॉनिक' प्रेम की तुलना में उस प्रेम का गौरव-गान करती है जिसमें दो मानस ही नहीं, दो शरीर भी एक हो जाते हैं, जिसकी क्षिप्र लहर में "केवल मन ही नहीं, अंग-संज्ञा भी खो जाती है।" इसी प्रसंग में चित्रलेखा उस स्त्री को धन्य बताती है जो बलिष्ठ पुरुष की पिपासु बाँहों में "आँख मूँद रसमग्न प्रणय-पीड़न असह्य सहती है," और उस पुरुष को धन्य कहती है जो वर्षों कठोर निष्काम तपस्या में निरत रह कर, अपने जठरानल को तीव्र तथा क्षुधा को उद्दीपित कर लेता है। जीवन का तीक्ष्ण स्वाद निरन्तर भोग-रत व्यक्ति नहीं, कुछ दिन उपवास करने वाला व्यक्ति ही जान सकता है—चित्रलेखा का यह विश्वास है।[1]

कवि चित्रलेखा के माध्यम से मट्टी और स्वर्ग का भेद मिटाने में इतना आतुर एवं चिन्तित है कि "आँख मूद रस-मग्न प्रणय-पीड़न असह्य सहने" की निविड़ श्रृंगारिक व्यंजना का प्रश्रय ग्रहण करता है और उपवास-निरत व्यक्ति की तीव्र क्षुधा की

१. 'उर्वशी', पृ० १०७–१०८।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावना करा कर, 'समृद्धिमान्' संभोग-सुख की कल्पना में इन्द्रिय-तर्पण-शील पाठकों को ऊब-चूब करा देता है।

सुकन्या पति-परायणा सती-साध्वी गृहिणी है। उसके 'आनन्द-धाम' केवल महर्षि भर्त्ता हैं। यौवन की क्षण-भंगुरता को ध्यान में रखते हुए, वह कहती है कि जब तक शरीर का उपवन हरा-भरा हो, तभी तक किसी एक व्यक्ति के साथ जीवन का तार बाँध लेना नारी के लिए श्रेयस्कर है। इस मर्त्य भुवन में मानवी, यौवन की छलना को जीवनावलंब नहीं बना सकती। उसके लिए तो 'मधु-पूर्ण हृदय' ही 'जीवन का आनन्द-कोष' है। जहाँ अप्सरियाँ चिर-यौवन का रस उद्विग्न होकर भोगती हैं, वहाँ मानवियाँ निश्छल, शान्त, विनम्र, प्रेम-भरे हृदय के उत्सर्जन से महत् सुख की उपलब्धि करती हैं। सुकन्या ऋषि-नयनों से अपने प्रथम साक्षात्कार का जो वर्णन [करती है, वह नितान्त सटीक एवं मनोहारी है। समाधि में लीन मुनि-सत्तम की पलक जब उसने खींची थी, तब उसे ऐसा लगा था जैसे उनके उद्भासित नयन-रन्ध्रों से आग की लपट फूट निकली हो। किन्तु, सुकन्या उस अग्नि में जली नहीं क्योंकि ऋषि के नयनों का पावक तत्काल शीलत मधु की ज्वाला में परिणत होने लगा—

"मानो, प्रमुदित अनल-ज्वाल जावक में बदल रहा हो।
नयन रक्त, पर, नहीं कोप से, आसव की लाली से।"

और,

"सहसा फूट पड़ी स्मिति की आभा ऋषि के आनन पर;
लौट गया मेरी ग्रीवा पर आकर हाथ प्रलय का।"

और तब,

"ज्यों हुई सचेत कि लज्जा से सुगबुगा उठी मैं।
पर संभाल कर खड़ी देखने लगी बंक लोचन से,
अब, जानें, क्या भाव सुलगते हैं महर्षि के मुख पर।"

भय का भाव कैसे शृङ्गार की व्रीडा एवं आश्वस्ति में पिघल गया, कठोर तपस्या की अग्नि कैसे सुकुमार मुसकान की हलकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आभा में विलुप्त हो गई—इस भाव-संधि का जो चित्रण उक्त पंक्तियों में उपलब्ध है, वह हिन्दी-कविता के लिए महत्त्व का अवदान माना जाएगा। समाधिस्थ शंकर तथा पार्वती के प्रथम साक्षात्कार के चित्रांकन में कालिदास ने भी रस-परिवर्तन की ऐसी किरणें प्रक्षिप्त नहीं की हैं।

किन्तु, च्यवन की तपोभंग की प्रतिक्रिया के चित्रण में, मेरी सम्मति है, कवि की सफलता असंदिग्ध नहीं मानी जाएगी। तपस्या के बल से नवीन यौवन ग्रहण करने पर हमें कोई आपत्ति नहीं है, उलटे, हमें ग्लानि होती यदि कवि ने जरा-जर्जर मुनि के बाहु-वलय में नवयुवती सुकन्या को समर्पित कर दिया होता। शृङ्गार की हमारी संस्कार-बद्ध भावना में कुरूप एवं वार्धक्य को कभी प्रश्रय नहीं मिला ; नटवर कृष्ण ने मथुरा में सैरन्ध्री कुब्जा को भी रूप-शालिनी नव-यौवना में रूपान्तरित करके ही प्रणय-दान दिया था। अतएव, दिनकर की इस उद्भावना के हम प्रशंसक हैं। किन्तु, जब च्यवन अपनी कठोर तपस्साधना के चरम पुरस्कार-रूप में सुकन्या को ग्रहण करते हैं,

"सो तुम सम्मुख खड़ी तपस्या के फल की आभा-सी,

× × ×

हरि प्रसन्न यदि नहीं; सिद्धि बन कर तुम क्यों आई हो ?"

तब हमें ऐसा लगता है जैसे औचित्य का अपघात हुआ हो। नारी को गौरवान्वित करने की चिन्ता से, तपोधन ऋषियों की आध्यात्मिक महिमा को कुंठित करने के लिए कवि बाध्य हो गया है। किन्तु, यह बाध्यता सचेतभाव की प्रसूति है, क्योंकि सुकन्या के मुख से बार-बार "हरि प्रसन्न यदि नहीं" वाली पंक्ति दुहराई गई है। यह सिद्ध करता है कि कवि इन्द्रिय-तर्पण को तापसों के एक-मात्र 'रत्न' (तपस्साधना) का पवित्र आस्पद मानता है—

"मणि-माणिक्य नहीं, तप केवल एक रत्न तापस का;
शुचिस्मिते ! मैं वही रत्न तुमको अर्पित करता हूँ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ यह कह देना उचित समझता हूँ कि "हरि प्रसन्न" वाली प्रशस्ति सुन कर, स्वयं सुकन्या को जो अभिनव प्रसन्नता हुई है, जो नई चेतना उसकी शिराओं में दौड़ गई है, उसके चित्रण से हमें कोई असहमति नहीं है—

"लगा मुझे, सर्वत्र देह की पपरी टूट रही है,
निकल रही है त्वचा तोड़ कर दीपित, नयी त्वचाएँ;
चला आ रहा फूट अतल से कुछ मधु की धारा-सा,
हरियाली से मैं प्रसन्न आकंठ भरी जाती हूँ।"

'नई त्वचायें' निकलने की व्यंजना अतीव मोहक एवं उन्मीलक है। यह प्रतीति हमारे भावक-मानस में घर करती गई है कि दिनकर, सब कुछ कह लेने के बाद, नारी-हृदय के चित्रण में जितने कुशल हैं उतने पुरुष-मानस के उन्मीलन में नहीं। पुरूरवा के प्रणय के प्रकाश को जैसे दार्शनिकता ने पर्याच्छन्न कर लिया है, वैसे ही च्यवन की तपस्या की पवित्र महिमा को इन्द्रिय-तर्पण ने खंडित कर दिया है। 'भौतिक' एवं 'भौतिकोत्तर' के बीच समरसता उत्पन्न करने के तथा पुरुष के भीतर एक अतीन्द्रिय पुरुष एवं नारी के भीतर एक अगोचर नारी के संधान के प्रयास में कवि ने संतुलन खो दिया है और इस प्रकार आचार्य क्षेमेन्द्र ने जिस 'औचित्य' को काव्य के जीवित-रूप में प्रतिष्ठित किया है, वह उसकी पकड़ से पलायन कर गया है।

सुकन्या ने आगे महर्षि च्यवन की वत्सलता तथा गर्भिणी नारी के प्रति उनकी महत्त्व-बुद्धि का विस्तृत वर्णन किया है। शिशुओं को 'परमगूढ़ सत्ता' के केन्द्र से दूर नहीं बताने में मनुष्य के ईश्वरीय आविर्भाव (Divine Origin) तथा आधिभौतिकता के संस्पर्श से उस स्वर्गीय चिनगारी के शमन की धार्मिक अवधारणा की विज्ञप्ति हुई है। गर्भ का भार वहन करने वाली उर्वशी के प्रसंग में ऋषि द्वारा गर्भिणी स्त्रियों की प्रशस्ति का गान कराया गया है और इस सिलसिले में, प्रजा-सृष्टि में नारी के महत्त्वपूर्ण भाग का कथन करते हुए, इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोक को लोकोत्तर जगती से बाँधने वाले तंतु को 'प्रत्यक्ष त्रिया के उर' में प्रतिष्ठित बताया गया है।[1] हम पुनः यह कहने को बाध्य हो रहे हैं कि ये सभी अध्युक्तियाँ नीरस 'प्लैटिट्यूड्स' हैं और प्रस्तुत प्रसंग में सर्वथैव अनावश्यक हैं। कला की दृष्टि से विचार किया जाय, तो च्यवन के चरित्र के इन रंगों का उभार अनाहूत-सा प्रतीत होता है। सही बात यह है कि च्यवन के चरित्रांकन का सचेष्ट प्रयास होना ही नहीं चाहिये था। सुकन्या से प्राथमिक मिलन का चित्र अंकित करने के बाद, च्यवन को अधिक प्रकाश में लाना ही नहीं चाहिये था। उनका कर्त्तृत्व ही नाटक में क्या है? अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि उनकी अनुमति से कुमार आयु का उनके आश्रम में लालन-पालन हुआ है और उनकी आज्ञा से वह पुरूरवा के महल में पहुँचाया गया है। इतनी निष्क्रिय भूमिका सम्पन्न करने वाले पात्र के चरित्रांकन का प्रयास ही सुविचारित नहीं कहा जाएगा, भले ही अन्य पात्रों का उल्लेख करते समय उसके शील पर आनुषंगिक रूप में कुछ प्रकाश-किरणें प्रक्षिप्त हो जायँ। तो, च्यवन के चरित्रांकन के मूल में कवि का मन्तव्य था, केवल नारी की महत्ता का विज्ञापन। अतएव, यहाँ भी वह संतुलन की रक्षा नहीं कर सका है।

उर्वशी के मातृ-हृदय का जो अङ्कन इस अङ्क में हुआ है, वह अवश्य श्लाघ्य है। गर्भ में शिशु को छिपाये, उर्वशी उसके व्यक्तित्व की समृद्धि के लिए क्या-क्या कामनाएँ करती थी, इसका चित्रण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है।[2] भरत के शाप से उर्वशी के मानस में पत्नीत्व एवं मातृत्व के बीच जो संघर्ष उत्पन्न हो गया है, उसके चित्रांकन में मातृत्व का परिपक्ष ही अधिक परिपुष्ट हुआ है। उर्वशी कहती है—

"अपना सुख तृणवत नगण्य है, उसे छोड़ सकती हूँ।
किन्तु, पुत्र का भाग्य भूमि पर रह कैसे फोड़ूँगी?"

---

१. वही, पृ० ११५–१७। २. वही, पृ० ११९–२०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उर्वशी ने इस संदर्भ में पृथिवी की सुषमाओं के प्रति अपने गहरे आकर्षण तथा गन्धमादन पर आस्वादित प्रणय-केलियों का भी कथन किया है।[1] ये सभी चित्रण सुन्दर तथा प्रसंगानुकूल हुए हैं।

(च)

पंचम अङ्क में पुरूरवा के स्वप्न, सुकन्या द्वारा आयु का राजभवन में आनयन, पुरूरवा द्वारा संन्यास-ग्रहण तथा रानी औशीनरी के वेदना-प्रकाश का चित्रण सन्निविष्ट है। आरम्भ में ही कहा जा चुका है कि स्वप्न की उद्भावना अत्यन्त नाटकीय है तथा कथानक के चमत्कार को बढ़ाने में इसने यथेष्ट सहयोग दिया है। विश्वमना द्वारा स्वप्न की व्याख्या की जाते समय उर्वशी की प्रतिक्रियाओं का चित्रण नितान्त सटीक एवं मर्मस्पर्शी तथा प्रभावोत्पादक है—

"आह ! क्रूर अभिशाप ! तुम्हारी ज्वाला बड़ी प्रबल है।
अरी, जली, मैं जली, अपाले ! और तनिक पानी दे।
महाराज ! मुझ हतभागी का कोई दोष नहीं है।"

पुरूरवा की चकपकाहट का भी चित्र सटीक एवं विश्वसनीय है—

"किसका शाप ? कहाँ की ज्वाला ? कौन दोष ? कल्याणी !
आप खिन्न होकर निज को हतभागी क्यों कहती हैं ?"

सुकन्या के प्रवेश तथा आयु-विषयक उसकी सूचना पर पुरूरवा में सहसा पितृत्व की जो किरणें उद्भासित हुई हैं, उनका चित्रांकन भी अत्यन्त नाटकीय है। वह उर्वशी से पूछता है कि इस 'प्राणों के आलोक' पुत्र-रत्न को उसने क्यों निष्ठुरता-पूर्वक छिपा लिया था ? "हाय ! भोगने से मेरा कितना सुख छूट गया है !"—इस कसक में पुरूरवा का पितृत्व मानो शत-शत जिह्वाओं से मुखर हो उठा है।

---

१. वही, पृ० १२५–२८।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उर्वशी के अदृश्य होने तथा सुकन्या के उस रहस्य-भेदन के फलस्वरूप पुरूरवा में वीर रस का जो प्रकाश आकस्मिक ढंग से फूट पड़ा है, उसके परिचित्रण में कवि की सरस्वती का पूर्व परिचित स्वरूप प्रकाशित हो गया है। "कहाँ रक्खेंगे सुर मेरी प्रेयसी प्रिया को ?" और,

"लाओ मेरा धनुष, यहीं से बाण साध अम्बर में,
अभी देवताओं के वन में आग लगा देता हूँ।
फेंक प्रखर, प्रज्वलित, वह्निमय विशिख दृप्त मघवा को
देता हूँ नैवेद्य मनुजता के विरुद्ध संगर का।"

—इन चित्रांकनों में पुरूरवा का क्षात्र शौर्य मूर्त्तिमान् हो उठा है।

पुरूरवा के इस अग्नि-विस्फोट के शमन के निमित्त कवि ने चन्द्रकुल के प्रारब्ध की योजना की है। महामात्य ने जो तर्कनाएँ देवों के साथ समर छेड़ने के विरुद्ध प्रस्तुत की हैं, उनका कोई प्रभाव पुरूरवा के ऊपर नहीं पड़ा है। "अपने ही श्रेष्ठ रूप से मानव युद्ध करेगा ?"—इस तर्कना से यदि पुरूरवा शान्त हो गया होता, तो उसके संन्यास-ग्रहण के लिए अवसर उपस्थित नहीं हुआ होता। एक बात उसके चरित्रांकन के सबन्ध में यह लक्षणीय होती है कि कवि ने उसके निसर्ग में मूलतः दो ही वृत्तियों का पल्लवन प्रदर्शित किया है। ये हैं प्रणय तथा चिन्तन, भोग तथा विरक्ति। शौर्य एवं पितृत्व प्रासंगिक रूप में ही समाविष्ट हुए हैं। अन्य मनुष्योचित गुणों का प्रस्फुरण पुरूरवा के चरित्र में नहीं हो सका है। महामात्य का यह कथन कि क्या मानव अपने ही श्रेष्ठ रूप से युद्ध करेगा, एक ऐसा संकेत था जिससे उसके भीतर का उदात्त, तितिक्ष मानव जाग्रत हो गया होता और देव-मानव संग्राम की विभीषिका भी निरस्त हो गई होती। मानवी मूल्यों के अभिनन्दन के वर्तमान युग में इस परिपाक का असंदिग्ध महत्त्व था—मानव के इस श्रेष्ठ रूप के सम्मानार्थ प्रणय का तिरस्कार बड़ा उद्बोधक सिद्ध हुआ होता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेकिन, पुरूरवा को प्रव्रजित करना ही कवि का अन्तिम उद्देश्य था। इसके लिए उसने आरम्भ से भूमिका भी तैयार की थी। प्रणय-प्रसंग में रहस्यमयी शक्ति तथा मनुष्य के उसकी इच्छा के अस्त्र-रूप में कार्य करने के प्रति जो विश्वास पुरूरवा में प्रतिष्ठित कर दिया गया था, उसकी परिणति, संन्यास छोड़ कर, अन्य हो ही नहीं सकती थी। प्रणय के विच्छिन्न एवं व्यापन्न होने की प्रतिक्रिया के सांसारिक सुखों के परित्याग का रूप ग्रहण करने की प्रिय-परिचित परम्परा का तिरस्कार अभिनव साहस की अपेक्षा रखता था। दिनकर ने उस साहस का परिचय नहीं दिया। चन्द्रकुल के प्रारब्ध ने देवों के साथ युद्ध करने के विरुद्ध जो तर्क दिये हैं, उनमें पुरूरवा को यह समझने के लिए आह्वान किया गया है कि उसके 'क्षण-क्षण की चिन्ता से दूर-दूर तक के भविष्य का मनुज' जन्म लेगा; और साथ ही नारी की माया-मनोज्ञ प्रतिमा के 'असह्य आमन्त्रण' की मरीचिका का कथन किया गया है। सबसे बढ़ कर यह तर्क प्रस्तुत हुआ है—

"नारी के भीतर असीम जो एक और नारी है,
सोचा है, उसकी रक्षा पुरुषों में कौन करेगा ?"

और यह उत्तर दिया गया है—

"वह, जो केवल पुरुष नहीं, है किंचित् अधिक पुरुष से।"

अर्थात्, इन तर्कनाओं की दो दृष्टियाँ हैं—प्रथम, यह कि पुरूरवा का वर्तमान आचरण भावी पीढ़ियों को प्रभावित करेगा जिसकी चिन्ता उसे होनी चाहिये और द्वितीय, यह कि मांसल नारी-मूर्ति के भीतर साँस लेने वाली एक अगोचर, इन्द्रियातीत नारी है जिसकी मान-रक्षा उसे ही करनी चाहिए। यह नारी तब उपलब्ध होगी जब वह 'मन के महा-गगन' में चढ़ कर उड्डयन करेगा,

"जहाँ त्रिया कामिनी नहीं, छाया है परम विभा की,
जहाँ प्रेम कामना नहीं, प्रार्थना, निदिध्यासन है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावी उत्तरदायित्व के स्मरण से अभिभूत, तथा स्त्री को पारमार्थिक सत्ता के आलोक की छाया एवं प्रेम को प्रार्थना समझने वाला व्यक्ति, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता की ऐसी निस्सहाय मनोदशा में, उतर आएगा जब निष्क्रिय संन्यास के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग, उसके बच निकलने के हेतु, संभव ही नहीं होगा। किन्तु, अगोचर नारीत्व की रक्षा तथा भावी पीढ़ियों के लिए एक प्रतिमान-स्थापन करने वाला पुरुष केवल 'पुरुष' नहीं होगा, अपितु होगा "किंचित् अधिक पुरुष से।" पुरूरवा को वही 'पुरुषाधिक पुरुष' बनना था। और, संन्यास-ग्रहण कर, उसने उस 'पुरुषाधिक-पुरुषत्व' का परिभाषण कर दिया, अर्थात् वह 'पुरुषाधिक पुरुष' संन्यासी ही होगा और संन्यास ही भावी मनुजत्व का चरम आदर्श होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि दिनकर की यह उपलब्धि वर्तमान मानवता के लिए श्रेयस्कर नहीं है। संघर्ष का परिणाम संन्यास, अथवा उस द्वन्द्व के घटक तत्त्वों की तीव्रता का शमन कर ऐसा जीवन-पृष्ठ खोज निकालना जहाँ व्यष्टि का पर्यवसान समष्टि में हो जाय—ये विकल्प थे पुरूरवा के लिए। किन्तु, कवि केवल उसे 'मनःशान्ति' खोजने का उपदेश दे रहा था और उस मानसिक शान्ति को 'अन्तर्मन' में प्रतिष्ठित बता रहा था—

"अन्तर्मन को जगा पूछ, वह जो संकेत करेगा,
तुझे मिलेगी मनःशान्ति उपवेशित उसी दिशा में।"

ऐसी अवस्था में पुरूरवा संन्यासी हो गया तो इसमें क्या आश्चर्य है ? यह स्पष्ट आभासित होता है कि अमिताभ बुद्ध का प्रभाव कवि-मानस को अभिभूत किये था, और इसी लिए, वह पुरूरवा को पलायनवादी बना कर रह गया। प्रगतिशील समालोचकों का आरोप है कि 'कामायनी' ने युग-धर्म के अनुकूल कोई उत्तम आदर्श प्रस्तुत नहीं किया। यही बात अधिक शक्ति के साथ 'उर्वशी' के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। अपितु, प्रसाद ने तो शैवों के आनन्दवाद का आदर्श रख कर, मनुष्य-जीवन के हिताय कुछ-न-कुछ निश्चित, स्वीकारात्मक ('पाजिटिव')

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप की कोई वस्तु प्रदान की; दिनकर ने उस द्वन्द्व को गहरे रंगों में उभार कर जिसका, अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से, प्रत्येक मनुष्य अपने पार्थिव जीवन में समंजस समाधान निकाल लिया करता है, हमें संन्यास की सर्द निष्प्रभ एवं निष्प्राण तराइयों में प्रतीष्ठित कर दिया। कवि को संभवतः स्वयं इस बात की धुँधली प्रतीति थी, इस लिए, उसने अपने भीतरी आश्वासन के निमित्त पुरूरवा के मुख से यह कहलाया—

"तो मैं ही क्यों रहूँ सदा तपता मध्याह्न-गगन में ?
नये सूर्य को क्षितिज छोड़ ऊपर नभ में आने दो।"

किन्तु, कुमार आयु को राज्याभिषिक्त कर देने मात्र से, उसके भार-मुक्त होकर, कानन-सेवन के संकल्प का अनुमोदन नहीं किया जा सकता।

पुरूरवा के संन्यास पर एक अन्य दृष्टि से विचार किया जा सकता है। क्या उसके प्रव्रजित होने से उसके प्रेमी-रूप की गहराई की विज्ञप्ति होती है ? पुनः क्या उसका संन्यास 'रघुवंश' के क्षत्रिय नरेशों के संन्यास की कोटि में परिगणित हो सकता है ? उर्वशी के अदृश्य होने पर उसकी प्राथमिक प्रतिक्रिया वीरत्व-प्रदर्शन की होती है। यह उसके प्रणयि-रूप को ही उद्भासित करता है। यदि देवों से युद्ध करने के संकल्प से वह महामात्य के अनुरोध पर विरत हो गया होता और यह समझ कर संन्यास ग्रहण किये होता कि जब देवों से समर छेड़ना उचित नहीं है, तब प्रिया-विश्लेष की अवस्था में राज्य-सुखों का उपभोग व्यर्थ है, तो निश्चित् रूपेण उसका प्रणयि-रूप अत्यधिक गहरा बन गया होता। किन्तु, उसने जिस तर्क-सरणि के द्वारा संन्यास लेने का निश्चय किया है,

"अन्तरतम के रुदन, अभावों की अव्यक्त गिरा को
कितनी बार श्रवण करके भी मैंने नहीं सुना है।"

उससे यही सिद्ध होता है कि उसका संन्यास उसके कान्ता-विप्रयोग का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं था, और इसी लिए, यह कहना चाहिये कि उसके प्रव्रजित होने से उसके प्रेम की गहराई का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्मीलन नहीं होता। दूसरी बात है, 'रघुवंश' के राजाओं के संन्यास की। यहाँ स्मरणीय है कि कालिदास के रघुवंशी नरेश वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादाओं के भीतर, पार्थिव जीवन के उत्तरदायित्वों के सम्पादन के उपरान्त, संन्यास ग्रहण करते थे। उनके अन्तर्जीवन में कोई द्वन्द्व या संघर्ष वर्तमान नहीं था क्योंकि उनके सामने जीवन-यापन की एक निश्चित योजना थी। 'उर्वशी' के पुरूरवा के लिए न कोई ऐसा आदर्श है, न कोई योजना। वह उखड़ा-उखड़ा, विस्थापित–जैसा है। प्राचीन मूल्यों का प्रकाश उसका पथ-प्रदर्शन नहीं कर रहा है यद्यपि प्रव्रजित होकर, वह प्राचीनता के गौरव से विभूषित होना अवश्य चाहता है। वह अतिशय रूप में अन्तर्मुखी है, और इसीलिए, उसका अन्तर्जीवन संतुलन-मय नहीं है, 'इंटिग्रेटेड' (Integrated) नहीं है। वह कृत्रिम द्वन्द्व का आखेट बन गया है, और यह द्वन्द्व-बुद्धि इसलिए बलवती बन गई है कि उसका स्रष्टा कवि आधुनिक है, भले ही वह सहज-मार्गियों जैसे प्राचीन साधना-सम्प्रदायों की दलील देता हो।[1] वह केवल प्रश्न खड़ा करता है और उनका समाधान प्रस्तुत करने से कन्नी काट जाता है।[2] अतएव, स्पष्ट ही, वह प्राचीन कवियों की बिरादरी में शामिल नहीं किया जा सकता; और इसीलिए, पुरूरवा का संन्यास रघुवंशी नरेशों के संन्यास की कक्षा में समाविष्ट नहीं हो सकता।

(छ)

पुरूरवा के प्रव्रज्या-प्रकरण के बाद वाला अंश गृहिणी नारी की वेदना एवं महत्ता का प्रकाश है। औशीनरी की व्यथा सामान्य भारतीय नारी की व्यथा है जो मूक भाव से, अपने प्रणय की ज्वाला छिपाए, पति-सुख की कामना करती हुई तथा उसकी क्रियाओं में, बिना ननु-नच किये, अपनी सहमति प्रकट करती हुई, गृहस्थी का भार ढोते चलती है। औशीनरी भारतीय गृहिणी के

१. भूमिका, पृ० (ख).　　　२. वही, पृ० (छ).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस 'धूमिल कोने' की निवासिनी है जहाँ इतिहासों की पद-चाप नहीं सुनाई पड़ती, जहाँ प्रणय "नीरव, अकंप" है और कामना "स्निग्ध, शीतल" है; जहाँ चरणों के नीचे मूँगों की अरुण सेज नहीं; जहाँ कपोल एवं अधरों की सुषमा आग नहीं उगलती और न त्वचाओं से चिनगारियाँ छूटती हैं; जहाँ नारी पुरुष की प्रेयसीमात्र नहीं, अपितु "अमृत-दायिनी, बल-विधायिनी माता भी होती है।"

तो भी, औशीनरी का चरित्र 'टाइप' मात्र नहीं है। पुरूरवा ने संन्यास लेते समय जो उससे परामर्श नहीं किया, उसकी कोई सूचना नहीं दी, उसका उसे महान् दुःख है—"कैसी अवमानना! प्रतारण कितना तीव्र गरल-सा!" इतना ही नहीं, "छला किसी ने, और वज्र आ गिरा किसी के सिर पर।" यह पुरूरवा के आचरण के विरुद्ध विद्रोह की प्रतिक्रिया है यद्यपि क्षीण एवं दुर्बल। फिर, औशीनरी को अपने ही आचरण पर पश्चात्ताप होता है जो परिस्थितियों से अवदमित विद्रोह की जाति का ही समझा जाएगा। उसे अपनी ही गोपनशीलता एवं शालीनता पर पश्चात्ताप हो रहा है जिसमें दबे-दबाये आक्रोश की चिनगारी की चमक देखी जा सकती है—

"गवाँ दिया सर्वस्व हाय, मैंने छिप कर छाया में,
अस्वीकृत कर खुली धूप में आँख खोल चलने से।

× × × ×

पछताती हूँ हाय, रक्त आवरण फाड़ व्रीडा का
व्यंजित होने दिया नहीं क्यों मैंने उस प्रमदा को
जो केवल अप्सरा नहीं, मुझमें भी छिपी हुई थी?"

× × × ×

जीत गयीं वे जो लहरों पर मचल-मचल चलती थीं,
उड़ सकती थीं खुली धूप में, मेघों-भरे गगन में;
हारी मैं इसलिए कि मेरे व्रीड़ा-विकल दृगों में
खुली धूप की प्रभा, किरण कोलाहल की गड़ती थी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औशीनरी की वेदना में उसके अन्तस्प्राणों की विद्रोह-मयी, यद्यपि विडम्बित, क्रन्दन-ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही हैं। यह उसका पत्नी-रूप है। कुमार आयु को वह जिस स्नेह के साथ अंगीकार करती है—"पिता गये वन, किन्तु, अरे, माता तो यहीं खड़ी है"—वह उसके मातृ-रूप का उद्भास है जिसमें वि-मातृत्व की कोई किरण नहीं दिखाई पड़ती। वास्तव में, औशीनरी का चरित्र ही सम्पूर्ण रचना में तुलनात्मक दृष्टि से, सुव्यवस्थित बन पड़ा है, और 'उर्वशी' औशीनरी पर जितना गर्व कर सकती है, उतना उर्वशी पर नहीं।

सुकन्या का शील-निरूपण ऋषि-पत्नी के अनुकूल हुआ है। वह भी एकांत पतिव्रता गृहिणी है, और ऋषि-भार्या होने के कारण, निसर्ग से प्रशान्त एवं तनिक दार्शनिक है। उसने नारी की परिभाषा यों की है—

"अपनी सहज भूमि नारी की धूप नहीं, छाया है।"
"किन्तु नारियाँ क्रिया नहीं, प्रेरणा, प्रीति, करुणा हैं।"
"नारी क्रिया नहीं, वह केवल क्षमा, शान्ति, करुणा है।"

यह परिभाषा उसके मुनि-पत्नी होने के सर्वथैव मेल में है। वह धरती पर ऐसे 'स्वर्णिम भविष्य' के अवतरण की कल्पना करती है जब वर्तमान हिंसा एवं संघर्ष का शमन हो जाएगा और,

"जब धरती पर निनद नहीं, नीरवता राज करेगी;
दिन भर कर संघर्ष पुरुष जो भी इतिहास रचेगा,
बन जायेगा काव्य, साँझ होते ही, भवन-भवन में !"

'नीरवता' शब्द के प्रयोग पर हमें आपत्ति है क्योंकि यह निर्जीवता का प्रतीक है, किन्तु, सुकन्या का भाव स्पृहणीय है। वह ऐसे पुरुष की सर्जना करने का स्वप्न नारियों के लिए देख रही है जो 'कर्कश कोलाहल' में भी 'मौन एवं कातर करुणा' की पुकार सुनेगा और बिना कहे ही, मूक व्यथा की कसक तथा 'आँसुओं की निस्तब्ध गिरा' को समझ लेगा। जब औशीनरी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आयु को हृदय से लगाकर, उसके ऊपर आँसू गिराने लगती है, तब सुकन्या कहती है—

"बरस गया पीयूष, देवि ! यह भी है धर्म त्रिया का,

× × × ×

मैं अपने घर, देवि ! आप अपने प्रार्थना-भवन में ।"

औशीनरी को अपने प्रार्थना-भवन में लौट जाने का उपदेश देने वाली यह मुनि-पत्नी कवि की सुंदर सृष्टि समझी जा सकती है।

(ज)

स्थापत्य की दृष्टि से औशीनरी-सुकन्या का प्रस्तुत प्रकरण कहाँ तक समीचीन है, इसमें सर्वदा दो मत रहेंगे। 'उर्वशी' का नायक पुरूरवा और नायिका उर्वशी है। तब, नायिका के अदृश्य हो जाने और नायक के प्रव्रजित हो जाने के बाद, रंग-मंच रिक्त-सा हो जाता है। वैसी दशा में नाटक की समाप्ति उसी के आस-पास होनी चाहिए। औशीनरी तथा सुकन्या ने, एक प्रकार से, उर्वशी-पुरूरवा प्रणय पर टीकाएँ की हैं, तब जब दोनों रंगमंच छोड़ चुके हैं। अतएव, उनकी टीका-टिप्पणी के लिए अवसर नहीं प्रदान किया जाना चाहिए था। प्रश्न है कि यदि पुरूरवा के संन्यास के साथ नाटक समाप्त हो गया होता, तो पाठक कौन-सी वस्तु खो देता और यदि नाटक वहाँ समाप्त नहीं हुआ, तो वह कौन-सी वस्तु पा गया ? पहले प्रश्न के उत्तर में यह कहा जाएगा कि वैसी हालत में पाठक को संन्यास की निष्क्रियता और प्रणय की व्यर्थता हाथ लगी होती : उसे केवल उपलब्ध हुआ होता ऐसा पुरूरवा जो कभी भोग के लिए तड़पता था और कभी योग एवं अद्वैत के लिए; फिर उसे केवल मिली होती ऐसी उर्वशी जो प्रकृति तथा परमेश्वर का द्वैत मिटाने की चिन्ता में स्वयं मिट गई। कविता पुरूरवा-प्रव्रज्या की सीमा से आगे बढ़ गई तो मिला कुमार आयु जो, मेरी समझ में, सम्पूर्ण काव्य में अकेला प्रकाश-दीप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है यद्यपि शायद कवि स्वयं ऐसा नहीं समझता; और मिलीं सुकन्या तथा औशीनरी के चरित्र की वे किरणें जो हमें 'उर्वशी' की अन्यथा भावात्मक अनुर्वरता में तनिक संतोष एवं प्रसन्नता प्रदान करती हैं। औशीनरी के विलाप का अनुमोदन न करने पर भी, कविता के संन्यास की सीमान्त-रेखा के अतिक्रमण कर जाने के तथ्य का हमने मनसा स्वागत किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२

सामान्य समीक्षा

(क)

दिनकर ने उर्वशी-पुरूरवा की पुरानी परिचित प्रेम-कहानी को अपनी रचना का विषय बनाया है। किन्तु, जहाँ कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीय' में प्रणय के संभोग एवं विप्रलम्भ पक्षों का ही मुख्यतः परिचित्रण किया है, वहाँ दिनकर ने इस प्रेम-कथा में द्वन्द्वों की सृष्टि कर, पाठकों के लिए दार्शनिक उपपत्तियों की दावत भी सजायी है जिनमें पुरुष और नारी की नई परिभाषा की गई है, प्रकृति तथा परमेश्वर के बीच के द्वैत के निराकरण का प्रयास किया गया है और प्रेम के ऊर्ध्वग स्वरूप का निरूपण किया गया है। किन्तु, प्रेम प्रेम ही है और उसका प्रकृत प्रकाश साधारण मिट्टी के धरातल पर ही विच्छुरित होता है। हमारे भक्त-कवियों ने, जिन्हें हमारी संस्कृति को नव-संघटित करने का श्रेय प्राप्त है, परमेश्वर को भी जब रूप एवं गुण से विभूषित किया, तब उन्हें मनुष्य की धरती पर उपस्थित कर, मानव-सुलभ भूखों एवं परितृप्तियों से मंडित कर दिया। राधाकृष्ण की रहःकेलियाँ साधारण मिट्टी के मनुष्य की नाईं, अपितु, उससे भी अधिक गहरे एवं मांसल रूप में प्रकट हुई हैं। दिनकर ने उस प्रणय-कथा को जो शुद्ध मांसल आयाम रखती है, रूपान्तरित कर दिया है और दोनों तड़पन-शील प्रेमियों को, न्यूनाधिक परिमाण में दार्शनिक चिन्तक बना दिया है। पुरूरवा अद्वैतदर्शी तथा किसी अदृश्य सत्ता की इच्छाओं का अस्त्र-मात्र बनकर, अन्ततः संन्यासी बन जाता है। उर्वशी 'सौन्दर्य-चेतना की तरंग' होने पर भी, प्रकृति एवं परमेश्वर की अभिन्नता का निरूपण करती हुई, गीता के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनासक्ति योग की उपदेशिका बन जाती है। दिनकर ने परिचित प्रसंग को उलट कर, केवल उलझनों की सृष्टि की है और समाधान से पलायन कर गए हैं। मेरी सम्मति में, प्रेम की तरंगों को दार्शनिक नहरों में प्रवाहित करने का यह संकल्प सुविचारित नहीं था और इसीलिए, कविता के 'अविचारित-रमणीय' की आत्मा पर इससे सीधा आघात पहुँचता है।

पुरूरवा और उर्वशी दोनों असाधारण कोटि के जीव हैं। न पुरूरवा प्रकृत पुरुष है, न उर्वशी प्रकृत नारी। वे अपनी-अपनी जाति का सही-सही प्रतिनिधित्व नहीं करते क्योंकि ये असामान्यत्व के उस विशिष्ट धरातल पर प्रतिष्ठित किये गए हैं जहाँ सामान्य मनुजता विश्वास एवं आश्वासन के साथ आँख उठा कर नहीं निहार सकती। वहाँ उसे अपने निसर्ग के वैसे अनूठे क्षितिज दृष्टिगोचर होते हैं जो उसे चौंकाते अधिक, आकर्षित कम करते हैं। सत्य वहाँ भी है, किन्तु साधारणीकृत नहीं, अपितु विशिष्ट मानसिक संघटन से परिणमित। उर्वशी स्वर्गीय अप्सरा है और 'धधक-धधक' जीने वाले मर्त्य मानव के मांसल प्रेम के उपभोग के निमित्त ही पृथ्वी पर आई है। इसी कारण, पुरूरवा की तुलना में वह अधिक विश्वसनीय है और अपनी जाति का प्रतिनिधित्व अधिक प्रामाणिक ढंग से करती है। पुरूरवा मर्त्य है और ऊपर उठने की कृत्रिम आकांक्षा से आक्रान्त हो कर, वह मर्त्यों का प्रकृत प्रतिनिधि नहीं बन पाया है। दिनकर ने भूमिका में सहजमार्गी साधना से अपनी उपपत्तियों के लिए अनुमोदन प्राप्त करने की बात कही है और साथ ही 'अभिनव मनोविज्ञान' का भी उल्लेख किया है।[1] मैं समझता हूँ, अभिनव मनोविज्ञान की चर्चा करते समय वेनिगर जैसे मनोविश्लेषणवेत्ताओं की इस उपपत्ति की ओर कवि का ध्यान खिंचना चाहिए था कि प्रत्येक पुरुष तीन-चौथाई पुरुष तथा एक-चौथाई स्त्री है और प्रत्येक स्त्री तीन-चौथाई स्त्री तथा

---

१ भूमिका पृ० (ख–ग).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक-चौथाई पुरुष है अथच दोनों का एक-चौथाई अंश पूर्णता प्राप्त करने के हेतु, एक-दूसरे के तीन-चौथाई अंश की खोज करता है। नर-नारी के इस पारस्परिक सहजाकर्षण की उदात्ती-कृत अवस्था में स्थूल की अतिक्रान्ति एवं सूक्ष्म की उपलब्धि हो सकती है, होती भी है; किन्तु, वह सूक्ष्म 'उर्वशी' में स्थापित अद्वैतवादी सूक्ष्म की ही जाति का होगा, यह कहना संगत नहीं है। सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय को अद्वैत पारमार्थिक सत्ता का पर्याय मान लेने से या उस अतीन्द्रियता को 'अदृश्य रहस्य-सत्ता' की सीमा में समाहित कर लेने से 'उर्वशी' की मानवीय 'अपील' खंडित हो गई है—बहुत-से मोहक भाव-रत्न चिन्तन की लपेट में धूमिल हो गए हैं।

डॉ० नगेन्द्र का कथन है कि "पुरूरवा के अन्तर्द्वन्द्व में विचारवान् पुरुष की कामानुभूति की द्विधा का चित्रण है। सामान्य, जैव स्तर पर कामानुभूति अंधी ऐन्द्रिय तृप्ति है—किन्तु मेधावी पुरुष की सक्रिय मेधा इस एक-रस तृप्ति के अखंड उपभोग में बाधा पहुँचाती है।"[1] पुरूरवा, तथ्य यह है, 'विचारवान् पुरुष' है ही नहीं। विचारवान् पुरुष भिन्न-भिन्न स्थितियों में तर्क करता है, उनके विभिन्न पहलुओं पर विवेक-पूर्ण सोच-विचार करता है और तब किसी निश्चय पर पहुँचता है। ऐसे पुरुष की कामानुभूति में भी द्विधात्व वर्तमान हो सकता है—जैव अनुरोधों तथा 'सक्रिय मेधा' के निर्देशों के बीच वह इधर से उधर और उधर से इधर भ्रमित हो सकता है, किन्तु उसके इस परिभ्रमण में भी उसकी मेधा की 'सक्रियता' तथा परितृप्ति की एक-रसता के विरुद्ध 'मानसिक प्रतिक्रिया' के तत्त्व निहित रहते हैं। पुरूरवा की कामानुभूति इस जाति की नहीं है। परितृप्ति अथवा 'इन्द्रिय-तर्पण' के विरुद्ध यदि उसके भीतर प्रतिक्रिया हुई होती, तो स्थिति एक-दम बदल गई रहती। वह तो आरंभ से ही अत्यन्त अलस एवं शिथिल

१. 'आजकल', जनवरी, १९६२, पृ० ३५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहा है क्योंकि आरम्भ से ही उसकी दृष्टि किसी विस्मय में डूब गई है—

"जब से हम-तुम मिले, रूप के अगम, फुल्ल कानन में
अनिमिष मेरी दृष्टि किसी विस्मय में डूब गयी है,
अर्थ नहीं सूझता मुझे अपनी ही विकल गिरा का"

अतएव, पुरूरवा विस्मय-ग्रस्त है; उसमें मेधा की सक्रियता का सवाल उठता ही नहीं। अधिक मौलिक तथ्य यह है कि उसकी 'कामानुभूति' में द्विधात्व नहीं है, द्विधात्व मूलतः वर्तमान है उसके मानसिक संघटन में जो उसे सर्वथा अलस एवं अशक्त बनाए हुए है, जो उसे प्रेम-रस का निविड़ आस्वाद लेते हुए भी रहस्योन्मुख बना देता है। पुरूरवा "आज के युग का भारतीय पुरुष" है ही नहीं। आज का भारतीय कर्मयोगी है, संन्यास का अभिलाषी नहीं। वस्तुतः पुरूरवा मध्यकालीन सूफी संतों की "चिन्मय अनुभूति" का नाट्य करता है। किन्तु अनुभूति उसका सम्बल नहीं है, सम्बल है उसका दार्शनिक 'चिन्तन', बौद्धिक 'तर्कना' अथवा 'विचारणा' भी नहीं। मध्य-कालीन भक्त एवं संत मूलतः अनुभूति के राजमार्ग से रहस्य-सत्ता के साथ मधुर अद्वैत की सिद्धि करते थे। पुरूरवा अनुभूति का धनी नहीं है। वह मूलतः चिन्तक है, चिन्तन की पगडंडी से अनुभूति के राजमार्ग में पैर रखना चाहता है। इसी कारण, वह उखड़ा-उखड़ा-सा प्रतीत होता है। वह आज का भारतीय पुरुष नहीं है, अन्यथा कुल-प्रारब्ध की वाणी से वह प्रव्रजित होने के लिए प्रवृत्त नहीं होता। मृण्मय अनुभूति और चिन्मय अनुभूति की समरसता का लालायित भारतीय, श्रमण-परम्परा को आगे नहीं बढ़ाता, प्रत्युत 'योगः कर्मसु कौशलम्' का उद्बोधक उदाहरण हमारे सामने उपस्थित करता। दिनकर की चेतना संन्यास को स्वीकार करने में असमर्थ है, यह कथन तथ्य-संगत नहीं है।[1] उनकी चेतना 'युग-चेतना' नहीं है, अलबत, द्वन्द्वों

१. वही, पृ० ३९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की सृष्टि कर, वह युग-सापेक्षता का नकाब पहनना चाहती है क्योंकि लोग कहते हैं कि आज संसार में द्वन्द्व-ही-द्वन्द्व है।

डॉ० नगेन्द्र ने भी अन्ततः स्वीकार किया है कि "कदाचित् पुरूरवा का मन्तव्य ही दिनकर का मन्तव्य है।"[1] मैं 'कदाचित्' के स्थान पर 'निश्चय ही' रख देना चाहूँगा और इसीलिए कहूँगा कि दिनकर युग-चेतना से एक-दम अछूते हैं। सचाई यह है कि उनके पास भी कोई सुविचारित एवं सुव्यवस्थित जीवन-दर्शन नहीं है, अन्यथा वे द्वन्द्वों का व्यूह निर्माण कर शान्त नहीं हो जाते। डॉ० नगेन्द्र, जैसे बिगड़ी बात को बनाने के लिए, दिनकर को 'द्वन्द्व का कवि' होने का श्रेय प्रदान करते हैं: "दिनकर द्वन्द्व का कवि है, समाहिति का कवि नहीं है, समस्या के सम्पूर्ण उद्वेलन का अनुभव कर प्राणों के पूरे आवेग के साथ अत्यन्त प्रभाव-मय अभिव्यंजना करना उसके लिए जितना स्वाभाविक है, समाधान प्रस्तुत करना उतना नहीं। इसलिए दिनकर के काव्य में स्वानुभूति का बल है और आत्म-स्वीकृति की स्वाभाविकता भी उसे प्राप्त है। द्वन्द्व उसका अनुभूत है, समाधान अनुभूत नहीं है।"[2] नगेन्द्र की इस टिप्पणी में तथ्य एवं अतथ्य का मिश्रण है। न द्वन्द्व दिनकर का अनुभूत है, न समाधान। द्वन्द्व की उन्होंने 'व्यभिचारिणी बुद्धि' (Meddling intellect) के द्वारा सृष्टि की है, वह उनके अन्तर्मन की सहज प्रतीति नहीं है। जैसे मकड़ा अपने जाल में अपने ही फँस जाता है, वैसे ही दिनकर भी अपने द्वन्द्व-व्यूह में फँस गए हैं। समाधान, अतएव उनकी बौद्धिक पकड़ के भी बाहर चला गया है। अनुभूत उनका एक ही तत्त्व है और वह है 'रक्त की भाषा', 'रक्त की लिपि' प्रेम की 'रसमय समाधि'। इसी कारण, जहाँ वे सौन्दर्य-तरंगों के मूर्त्तीकरण में दत्तचित्त हो जाते हैं, वहाँ उनके चित्र एवं बिम्ब मोहक एवं प्रभावशाली बन गए हैं—यह दूसरी बात है कि उनकी सौन्दर्य-

---

१. वही, पृ० ३९. २. वही, पृ० ३९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाधि चिन्तन की छलना-मयी अप्सरा के संघात से भंग हो जाती है।

"उद्वेलक प्रभाव की दृष्टि से" भी 'उर्वशी' को छायावादोत्तर युग का सबसे "प्रबल काव्य" बताना उचित नहीं है।[1] रचना प्रभाव-कारिणी नहीं है, ऐसा कहना हमारा अभिप्राय नहीं है। हमारी असहमति 'उद्वेलक' प्रभाव से है। वह प्रभाव जो हमारी अन्तरात्मा में उद्वेलन उत्पन्न कर दे, जो हमें सहसा झकझोर दे और हमारी मानसिक संतुष्टि एवं स्थिरता को हिलाकर, हमें नए जीवन-मूल्यों की खोज में प्रवृत्त कर दे, 'उद्वेलक प्रभाव' कहा जाएगा। ईमानदारी की बात है कि ऐसा प्रभाव 'उर्वशी' को आद्योपान्त पढ़ चुकने के बाद भी उत्पन्न नहीं होता। न तो उसके परिशीलन से हमारी 'त्वचा की कोई पँपरी' टूटती है, न मन एवं प्राणों का कोई नवीन क्षितिज ही उन्मीलित होता है और न हम अपने परिचित जीवन-मूल्यों में कोई परिवर्तन करने के लिए ही प्रवृत्त होते हैं। यदि यह तर्कना की जाय कि पुरूरवा के आचरणों से पाठक को नवीन सत्य अथवा सौन्दर्य का बोध होता है, तो मैं नम्रता-पूर्वक निवेदन करूँगा कि यह नवीन सत्य अथवा सौन्दर्य उतना ही पुराना है जितनी पुरानी मनुष्य-जाति। दिनकर ने उलटे एक सनातन सत्य (परमेश्वर वा रहस्य की अनुभूति) को एक दूसरे सनातन सत्य (नारी-तत्त्व का आकर्षण) के साथ इस प्रकार 'घोर-माठा' करने का उद्योग किया है कि उससे रहस्य अथवा अद्वैत सत्ता की महिमा ही पर आघात पहुँचता है, और साथ ही, हमारी मृण्मयी अनुभूतियों की व्यर्थता का भाव स्थूल रंगों में उभर आया है। देखिये—

"त्रिया! हाय, छलना मनोज्ञ वह! पुरुष मग्न हँसता है,
जब चाहिए उसे रो उठना कंठ फाड़, चिल्ला कर।"
"मृषा बन्ध विक्रम-विलास का, मृषा मोह माया का,

१. वही, पृ० ३९,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन दैहिक सिद्धियों, कीर्त्तियों के कंचनावरण में,
भीतर ही भीतर, विषण्ण मैं कितना रिक्त रहा हूँ !"

तथापि, मृण्मयी सिद्धियों की व्यर्थता के इस कथन से आज के युग-मानव के ऊपर कोई गहरा प्रभाव पड़ा हो, ऐसा कहना सत्य से बहुत दूर होगा। उलटे, पुरूरवा हमारे लिए एक दुर्बल एवं अस्त-व्यस्त मानसिक संघटन वाला (ill-integrated) व्यक्तित्व बन गया है जो हमें उद्वेलित करने के बदले केवल चौंकाता है। अतएव, 'उर्वशी' के ऊपर 'उद्वेलक प्रभाव' से सम्पन्न 'प्रबल काव्य' होने का महत्त्व नहीं मढ़ा जा सकता।

(ख)

तब, प्रश्न उपस्थित होता है कि 'उर्वशी' का आकर्षण कहाँ खोजा जाय ? मेरी समझ में, यह आकर्षण द्विविध है: प्रथम, नारी-तत्त्व के विभिन्न रूपों का उद्भास; द्वितीय, जीवन्त एवं प्रांजल बिम्बों की अवतारणा।

दिनकर नारी-तत्त्व के पंडित हैं। वह तत्त्व अपने समस्त रूपों में उनकी पारदर्शी प्रज्ञा के लिए हस्तामलकवत् बन गया है। उस तत्व का एक रूप स्वर्ग की अप्सराओं के चित्रण में अभिव्यक्त हुआ है—वह रूप जो समस्त चिन्ताओं से मुक्त होकर, निर्मल रजनी के रोमांस का आसव पीना चाहता है और संगीत-नृत्य के माधुर्य का आकण्ठ आस्वादन करना चाहता है। देखिये, परियाँ क्या गीत गा रही हैं—

"फूटी सुधा-सलिल की धारा,
डूबा नभ का कूल-किनारा,
सजल चाँदनी की सुमन्द लहरों में तैर नहाओ री !
यह रात रुपहली आयी।

× × ×

मुदित चाँद की अलकें चूमो,
तारों की गलियों में घूमो,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झूलो गगन-हिंडोरे पर, किरणों के तार बढ़ाओ री !
यह रात रुपहली आयी।
× + ×
हम गीतों के प्राण सघन,
छूम छनन छन्, छूम छनन।
बजा व्योम-वीणा के तार,
भरतीं हम नीली झंकार,
सिहर-सिहर उठता त्रिभुवन।
छूम छनन छन्, छूम छनन।
× × ×
हम अभुक्त आनन्द-हिलोर,
भिगो भूमि-अंबर के छोर,
बरसाती फिरतीं रस-कन।
छूम छनन छन्, छूम छनन।"
(पृ० ६–१०)

नारी अप्सरा-रूप में पुरुष को कनक-रंग में रँग देती है, उसके ताप-तप्त अधरों में अपना अधर-मधु उँड़ेल देती है, उसके उष्ण हाथों में अपने 'कंचन-कलशों' को सुख-पूर्वक छोड़ देती है, दूसरों में रचना की वेदना जगाती है, कितनों की आहों में निवास करती है, किन्तु किसी नर-विशेष की भुजाओं में स्वयं बँधती नहीं है। नारी की इस उन्मुक्त रसीली प्रवृत्ति के निरूपण में कीट्स की प्रसिद्ध 'निर्मम सुन्दरी' (La belle dame sans merci) का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। निम्न पंक्तियाँ देखें—

"सच है कभी-कभी तन से भी मिलतीं रागमयी हम,
कनक-रंग में नर को रँग देती अनुरागमयी हम;
देतीं मुक्त उँड़ेल अधर-मधु ताप-तप्त अधरों में,
सुख से देतीं छोड़ कनक-कलशों को उष्ण करों में;
× × ×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रचना की वेदना जगातीं, पर, न स्वयं रचतीं हम,
बँध कर कहीं विविध पीड़ाओं में न कभी पचतीं हम।
हम सागर-आत्मजा सिन्धु-सी ही असीम उच्छ्रल हैं,
इच्छाओं की अमित तरंगों से झंकृत, चंचल हैं।

× × ×

अपना है आवास, न जानें, कितनों की चाहों में,
कैसे हम बँध रहें किसी भी नर की दो बाहों में ?"

नारी का दूसरा रूप औशीनरी में चित्रित हुआ है। यह रूप हमारा प्रिय परिचित रूप है। उस रूप में नारी पति की कल्याण-कामना से अनुप्राणित होकर अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को दबा देती है और एकान्त पातिव्रत का पालन करती हुई, गृहस्थी का भार ढोये चली जाती है। औशीनरी की वेदना तथा विवशता का चित्रण कर, कवि ने उसे कोरा 'टाइप' नहीं रहने दिया है, अपितु उसके व्यक्तित्व को एक विशेषता प्रदान कर दी है। वह 'कुलवामा' है जो शील-धर्म का ध्यान कर, एक 'गणिका' को सपत्नी-रूप में स्वीकार कर लेती है—

"हाय, मरण तक जी कर, मुझको हालाहल पीना है।"

पुरूरवा के प्रव्रजित होने पर औशीनरी को जो चोट पहुँची है, उसमें पुरूरवा के प्रति तीव्र उपालंभ की भावना भी पंख फड़फड़ाती है—

"भूल गये क्यों दयित, हाय, उस नीरव, निभृत निलय में
बैठी है कोई अखण्ड व्रतमयी समाराधन में,
अश्रुमुखी माँगती एक ही भीख त्रिलोक-भरण से,
कण भर भी मत अकल्याण हो प्रभो ! कभी स्वामी का।

× × ×

किन्तु, हाय, हो गयी मृषा साधना सकल जीवन की;
मैं बैठी ही रही ध्यान में जोड़े हुए करों को;
चले गये देवता बिना ही कहें बात इतनी भी,
हतभागी ! उठ, जाग, देख, मैं मन्दिर से जाता हूँ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुकन्या के यह कहने पर कि मुक्ति-कामी पुरुष पत्नी से परामर्श क्यों करेगा, औशीनरी का छिपा, अवदमित तथा अनुशासित काम सजग हो जाता है और उसे इन शब्दों में वाणी मिल गई है—

"गवाँ दिया सर्वस्व हाय, मैंने छिप कर छाया में,
अस्वीकृत कर खुली धूप में आँख खोल चलने से।
देवि ! प्रेम के जिस तट पर अप्सरा स्नान करती है,
गयी नहीं क्यों मैं तरंग-आकुल उस रसित पुलिन पर ?
पछताती हूँ हाय, रक्त आवरण फाड़ व्रीडा का
व्यंजित होने दिया नहीं क्यों मैंने उस प्रमदा को
जो केवल अप्सरा नहीं; मुझ में भी छिपी हुई थी ?"

अतएव, औशीनरी का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है।

नारी का तीसरा रूप सुकन्या में प्रतिफलित हुआ है। यह सचमुच तापस-नारी है—धर्म के बंधनों से बँधी हुई, तापस-भर्त्ता पर गर्व करने वाली। यह नारी के 'स्वर्णिम भविष्य' का मधुर स्वप्न देखती है, यह विश्वास करती है कि 'सृजन का सुयोग' मिलने पर नारी ऐसे पुरुष की रचना करेगी जो—

"कातर मौन पुकार दूर पर खड़ी हुई करुणा की;
और बिना ही कहे समझ लेगा, आँखों-आँखों में,
मूक व्यथा की कसक, आँसुओं की निस्तब्ध गिरा को।"

सुकन्या वह शीलवती, शान्तिमयी नारी है जो इतिहासों में प्रथित होना नहीं चाहती, जो मानती है कि—

"अपनी सहज भूमि नारी की धूप नहीं, छाया है।"

और

"किन्तु, नारियाँ क्रिया नहीं, प्रेरणा, प्रीति, करुणा हैं।"

नारी का चौथा रूप स्वयं उर्वशी का रहा है जो काम की शुद्ध मांसल बुभुक्षा की प्रतीक है, किन्तु जिससे लोक का प्रयोजन नहीं सधता—इसलिए नहीं कि उसमें पृथ्वी का सुख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोगने की अदमनीय ललक वर्तमान है, अपितु इसलिए कि वह प्रकृति एवं परमेश्वर के बीच अद्वैत स्थापित करने के कृत्रिम मोह का आखेट बन गई है। यदि उर्वशी को भी पुरूरवा के समान दार्शनिक चिन्तक न बनाया गया होता, तो उर्वशी असली रूप में वह नारी-तत्त्व बन गई होती जो सम्पूर्ण सृष्टि की परिचालिका शक्ति है।

'उर्वशी' का दूसरा आकर्षण है उसकी जीवन्त एवं प्रांजल बिम्ब-मालिका। दिनकर की बिम्ब-योजना सचमुच समृद्ध एवं आकर्षक है। ये बिम्ब अधिकांशतया चन्द्रिका-चर्चित विभावरी तथा रूप-सौन्दर्य एवं प्रणयानुभूति से संबन्धित हैं। कम-से-कम ऐसे ही चित्र 'उर्वशी' को पाठकों के निकट लाएँगे। इन चित्रों में कवि की भाषा अत्यन्त सुन्दर एवं समर्थ बन गई है तथा उसकी कल्पना दार्शनिकता की मरीचिका से प्रायेण मुक्त होकर, ललित विलास करती है।

अलंकारों से दीप्त रजनी-रानी के ज्योतिर्विहार का एक बिम्ब यों देखिए—

"सम्राज्ञी विम्राट कभी जाते इसको देखा है
समारोह-प्रांगण में पहने हुए दुकूल तिमिर का,
नक्षत्रों से खचित, कूल-कीलित झालरें विभा की,
गूँथे हुए चिकुर में सुरभित दाम श्वेत फूलों के ?
और सुना है वह अस्फुट, मर्मर कौशेय वसन का,
जो उठता मणिमय अलिन्द या नभ के प्राचीरों पर
मुक्ता-भर, लंबित दुकूल के मन्द-मन्द घर्षण से,
राज्ञी जब गर्वित गति से ज्योतिर्विहार करती है ?"

रजनी-रानी तिमिर का दुकूल पहने हुए है। उसमें नक्षत्रों से खचित विभा की झालरें हिल रही हैं। रानी ने अपनी ग्रथित वेणी में सुरभित श्वेत कुसुम खोंस लिये हैं। इस प्रकार सज-धज कर, वह गर्व-मयी गति से समारोह के भव्य प्रांगण में ज्योतिर्विहार करने जा रही है। उसकी रेशमी साड़ी के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डोलते हुए दुकूल में मोती भरे हुए हैं। अतएव, जब वह पद-निपेक्ष करती है, तब आकाश के मणिमय चौतरे या प्राचीर पर साड़ी के किनारों के मन्द-मन्द घर्षण से मधुर, अस्फुट ध्वनियाँ निकलती हैं। कवि ने श्रृंगार-विभूषित रजनी-रानी के अभिसार के मोहक वैभव के अनुभवन के लिए पाठक को आमंत्रित किया है। इस चित्र में नेत्र, स्पर्श, श्रोत्र एवं घ्राण—इन चार-चार इन्द्रियों की परितृप्ति का युगपत् विधान किया गया है।

इसी के साथ ज्योत्स्ना के मसृण प्रसार तथा नक्षत्रों के उग आने के मोहक दृश्य का निम्न चित्रण भी द्रष्टव्य है—

"ना, यों………… …..."

"ना, यों नहीं; अरे, देखो तो उधर, बड़ा कौतुक है,
नग-पति के उत्तुंग, समुज्ज्वल, हिम-भूषित श्रृंगों पर
कौन नयी उज्ज्वलता की तूली-सी फेर रहा है ?
कुछ वृक्षों के हरित मौलि पर, कुछ पत्तों से छन कर,
छाँह देख नीचे मृगांक की किरणें लेट गयी हैं
ओढ़े धूप-छाँह की जाली अपनी ही निर्मिति की।

× × ×

दमक रही कर्पूर-धूलि दिग्वधुओं के आनन पर;
रजनी के अंगों पर कोई चन्दन लेप रहा है।
यह अधित्यका दिन में तो कुछ इतनी बड़ी नहीं थी ?
अब क्या हुआ कि यह अनंत सागर समान लगती है ?"
"और गगन पर जो असंख्य आग्नेय जीव बैठे हैं,
लगते हैं धुँधले अरण्य में हीरों के कूपों से।
चन्द्रमूर्ति-निर्मित हिमकण ये चमक रहे शाद्वल में ?
या नभ के रन्ध्रों में सित पारावत बैठ गये हैं ?
कल्पद्रुम के कुसुम, या कि ये परियों की आँखें हैं ?"

दिनकर की अप्रस्तुत योजना में मूर्त्त-अमूर्त्त सभी जाति के उपमान जुटाये गए हैं किन्तु, चित्र के पूर्ण प्रत्यक्षीकरण में ये सभी सहयोग देते हैं।

मिलनोपभोग के रसानंद का एक बिम्ब यों चित्रित है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"और तब सहसा
न जानें, ध्यान खो जाता कहाँ पर।
सत्य ही रहता नहीं यह ज्ञान,
तुम कविता, कुसुम या कामिनी हो।
आरती की ज्योति को भुज में समेटे
मैं तुम्हारी ओर अपलक देखता एकान्त मन से
रूप के उद्गम अगम का भेद गुनता हूँ।
साँस में सौरभ, तुम्हारे वर्ण में गायन भरा है,
सींचता हूँ प्राण को इस गंध की भीनी लहर से;
और अंगों की विभा की वीचियों से एक होकर,
मैं तुम्हारे रंग का संगीत सुनता हूँ।"

'आरती की ज्योति' को भुजाओं में समेटना तथा 'रंग का संगीत' सुनना—इन कल्पनाओं में छायावादी माधुरी उतर आई है। स्थूल शरीर वाली उर्वशी को भुजाओं में लपेट कर जो घोर ऐन्द्रिय सुख पुरूरवा को मिलता, वह उसे 'आरती की ज्योति' बना देने से क्षीण एवं सूक्ष्म बन गया है। 'रंग का संगीत' भी सामान्य अनुभव से अतीत है क्योंकि जो नेत्रों का विषय है, उसे कानों का विषय बना दिया गया है।

च्यवन की समाधि खंडित होने पर सुकन्या के अनुभवों का एक सुन्दर बिम्ब इन पंक्तियों में यों अंकित है—

"पर, मैं जली नहीं; तत्क्षण पावक ऋषि के नयनों का
परिणत होने लगा स्वयं शीतल मधु की ज्वाला में,
मानो, प्रमुदित अनल-ज्वाल जावक में बदल रहा हो।
नयन रक्त, पर, नहीं कोप से, आसव की लाली से।
सहसा फूट पड़ी स्मिति की आभा ऋषि के आनन पर;
लौट गया मेरी ग्रीवा पर आकर हाथ प्रलय का।
ज्यों ही हुई सचेत कि लज्जा से मुगबुगा उठी मैं।
पट सँभाल कर खड़ी देखने लगी बंक लोचन से,
अब, जानें क्या भाव सुलगते हैं महर्षि के मुख पर।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋषि-नयनों का पावक शीतल मधु में कैसे बदल गया, सुकन्या की प्रलयानुभूति मुग्धा की व्रीडा में कैसे परिणत हो गई, इस भाव-संधि का यह बिम्ब रमणीय समझा जाएगा।

इसी प्रकार, प्रीति के प्रथम-प्रथम उदय होने पर नारी पुरुष को कैसे अधिकृत कर लेती है, इसका एक अत्यन्त सटीक बिम्ब निम्नोद्धृत पंक्तियों में अंकित हुआ है—

"कितनी गौरवमय घड़ी वह भी नारी-जीवन की,
जब अंजेय केसरी भूल सुध-बुध समस्त तन-मन की
पद पर रहता पड़ा, देखता अनिमिष नारी-मुख को,
क्षण-क्षण रोमाकुलित, भोगता गूढ़ अनिर्वच सुख को!
यही लग्न है वह जब नारी, जो चाहे, वह पा ले,
उड़ओं की मेखला, कौमुदी का दुकूल मगँवा ले;
रँगवा ले उँगलियाँ पदों की ऊषा के जावक से,
सजवा ले आरती पूर्णिमा के विधु के पावक से।"

उर्वशी के स्वर्गीय मोहक रूप का एक चित्र यह द्रष्टव्य है—

"एक मूर्ति में सिमट गयी किस भाँति सिद्धियाँ सारी?
कब था ज्ञात मुझे, इतनी सुन्दर होती है नारी?

× × ×

जग-भर की माधुरी अरुण अधरों में धरी हुई-सी,
आँखों में वारुणी-रंग निद्रा कुछ भरी हुई-सी।

× × ×

दर्पण, जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है;
वह सौन्दर्य कला जिसका सपना देखा करती है;
नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवन की;
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की।"

उर्वशी के समुद्र में से निकलने की कल्पना को कवि ने इन शब्दों में मूर्त्त रूप प्रदान किया है—

"डूब गया सारा आकाश कुतुक-विस्मय में;
चकित खड़े होंगे सब जब यह प्रतिमा अरुण प्रभा की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आ कर ठहर गयी होगी कंपित, सुनील लहरों पर,
धूम-तरंगों पर चढ़ कर नाचती हुई ज्वाला-सी।
कैसा दीप रहा होगा पावक-मय रूप तुम्हारा
नील तरंगों में, झलमल फेनों के शुभ्र वसन में !
और चतुर्दिक् तुम्हें घेर उद्ग्रीव भुजंगिनियों-सी
देख रही होंगी काली लहरें किस उत्सुकता से ?
रुदन किया होगा कितना अम्बुधि ने तुम्हें गँवा कर !
मणि-मुक्ता-विद्रुम-प्रवाल से विरचे हुए भवन की
आभा उतर गई होगी, तुमसे वियुक्त होते ही
शून्य हो गया होगा सारा हृदय महासागर का।"

इन रूप-चित्रों में रोमांस की वह मनोदृष्टि जो सूक्ष्म को स्थूल रेखाओं में पकड़ना चाहती है तथा स्थूल को सूक्ष्म की माया में लपेटना चाहती है, अतीव मोहक रूप में प्रतिफलित हुई है। अंग्रेजी रोमांटिक कवियों के समान दिनकर ने कल्पना की शक्ति को सक्रिय बना कर, सौन्दर्य को विस्मय के रंगों में रंजित किया है और उर्वशी के भू-लोक में प्रकटी-करण के साथ, अम्बुधि के मणि-विद्रुम-निर्मित भवन की आभा के अचानक शून्य हो जाने का उल्लेख कर, प्रकृत, यूरोपीय शैली के रोमांस का अवतरण कर दिया है। 'कंपित सुनील लहरों के ऊपर धूम-तरंगों पर चढ़ कर ज्वाला के समान नाचती हुई' 'अरुण प्रभा की प्रतिमा' के प्रत्यक्षीकरण का चित्र कवि की रोमांटिक कारयित्री प्रतिभा का रमणीय निदर्शन है।

पुरूरवा की प्रणय-विह्वल मानसिक दशा का निम्न चित्र भी दर्शनीय है—

"नक्षत्रों के बीज प्राण के नभ में बोने वाली !
ओ रसमयी वेदनाओं में मुझे डुबोने वाली !
स्वर्ग-लोक की सुधे ! अरी, ओ, आभा नन्दन-वन की !
किस प्रकार तुझ तक पहुँचाऊँ पीड़ा मैं निज मन की ?"

'प्राणों के आकाश में नक्षत्रों के बीज' उगाने की कल्पना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मधुर एवं मोहक है। आकाश में नक्षत्रों के उगने से आकाश की शोभा खिल जाती है, आकाश हँसने लगता है। तो, प्राणों के आकाश में जब नक्षत्रों के बीज उगेंगे, तब प्राणों में हर्ष एवं उल्लास का संचार होगा। अतएव, उर्वशी पुरूरवा के प्राणों को हर्ष एवं उल्लास से भरित करने वाली है।

प्रणय-भोग की आतुरी एवं अडिग निश्चय का एक चित्र पुरूरवा के निम्न शक्ति-गर्भित उद्घोष में बिम्बित हुआ है—

"रुको समय-सरिते ! पल ! अनुपल ! काल-शकल ! घटिकाओ !
इस प्रकार, आतुर उड़ान भर कहाँ तुम्हें जाना है ?
कहीं समापन नहीं ऊर्ध्वगामी जीवन की गति का,
काल-पयोनिधि का त्रिकाल में कोई कूल नहीं है।
कहीं कुंडली मार बैठ जाओ नक्षत्र-निलय में,
मत ले जाओ खींच निशा को आज सूर्य-वेदी पर।
रुको पान करने दो शीतलता शतपत्र कमल की;
एक सघन क्षण में समेटने दो विस्तार समय का,
एक पुष्प में भर त्रिकाल की सुरभि सूँघ लेने दो।"

समय के प्रवाह को शासित करने का यह संकल्प, इसलिए कि मिलन का निविड़ ऐकान्तिक उपभोग किया जा सके, प्रणय की शक्ति का विज्ञापन करता है। मिलन की मधुर, सुकुमार अनुभूति इन पंक्तियों में कितनी शक्ति-शालिनी बन गई है! संभोग-शृंगार में यहाँ जो वीर रस का पुट आ गया है, वह सुरत-संग्राम वाले मध्यकालीन चित्रों की तुलना में नितान्त स्फूर्ति-प्रद प्रतीत होता है।

एक ही परम सत्ता के निखिल-सृष्टि-व्यापी प्रसार एवं प्रकाश का एक विराट् चित्र इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

"जिसकी इच्छा का प्रसार भूतल, पाताल, गगन है,
दौड़ रहे नभ में अनन्त कन्दुक जिसकी लीला के
अगणित सविता-सोम, अपरिमित ग्रह, उडुमंडल बनकर;
नारी बन जो स्वयं पुरुष को उद्वेलित करता है
और बेधता पुरुष-कान्ति बन हृदय-पुष्प नारी का।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निधि में जल, वन में हरीतिमा जिसका घनावरण है,
रक्त-मांस-विग्रह भंगुर ये उसी विभा के पट हैं।"

परमात्मा की सर्व-व्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्ता का भावन कराने में यह चित्र पूर्णतः समर्थ है। ऐसे चित्र एक नहीं, अनेक मिल जाएँगे; और यदि ये कथा-संदर्भ से विच्छिन्न कर दिये जायँ और तब इन पर विचार किया जाय, तो निश्चित ही, ये 'काव्य-पुरुष' का सुन्दर प्रतिनिधित्व करेंगे।

उर्वशी के प्रणय-व्यापार की अत्यन्त दारुण परिणति (पुरूरवा की प्रव्रज्या) में औशीनरी की विवशता-पूर्ण स्थिति का एक मर्म-स्पर्शी चित्र यों अंकित है—

"कौन सका कह व्यथा ? नहीं देखा, समग्र जीवन में
जो कुछ हुआ, देख उसको मैं कितनी मौन रही हूँ
कोलाहल के बीच मूकता की अकंप रेखा-सी ?"

औशीनरी की दयनीय अवस्था—यह कि इतनी बड़ी उथल-पुथल में उसका कुछ वश नहीं चला—की व्यंजना के लिए 'मूकता की अकंप रेखा' का उपमान अत्यन्त सटीक है।

'उर्वशी' की बिम्ब-योजना पर डॉ० नगेन्द्र की ये टिप्पणियाँ उल्लेखनीय हैं : "इन बिम्बों की रेखाएँ कहीं सूक्ष्म-तरल, कहीं तीखी और दृढ़, कहीं विराट एवं सघन हैं—इनके रंग चित्र-विचित्र और भास्वर हैं। समृद्धि और वैचित्र्य में यदि वे पन्त के बिम्बों से हीनतर हैं तो आयाम में उनसे बढ़कर भी हैं। इसी प्रकार यदि प्रसाद और निराला के बिम्ब-विधान अपने आयाम के कारण दिनकर के बिम्ब-विधान से भव्यतर हैं, तो समृद्धि में दिनकर की बिम्ब-योजना भी उनसे कम नहीं है। छायावादी कवियों की अपेक्षा दिनकर का बिम्ब-विधान अधिक मूर्त, प्रत्यक्ष और अनुभव-गम्य है। × × × वस्तुतः 'उर्वशी' की बिम्ब-योजना अत्यन्त समृद्ध है—विराट और कोमल, उदात्त और मधुर बिम्बों का ऐसा अपूर्व संकलन आधुनिक युग के बहुत कम काव्यों में मिलता है। सम्पूर्ण काव्य ही एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रंगीन चित्रशाला है जिसमें शब्द और अर्थ की व्यंजनाओं से अंकित नख-चित्र, रेखा-चित्र, रंगचित्र, तैल-चित्र और विराट भित्ति-चित्र जगमग कर रहे हैं"[1]

डॉ० नगेन्द्र की ये टिप्पणियाँ सर्वथैव उचित एवं सटीक हैं। दिनकर ने रूप के लिए अरूप तथा अरूप के लिए रूप, सूक्ष्म के लिए स्थूल तथा स्थूल के लिए सूक्ष्म का अवलंब लिया है और अपने भावों को अत्यन्त प्रभावशाली रीति से रूपायित किया है। पुनर्जागरण-कालीन समीक्षक फिलिप सिडनी ने कहा है कि कविता 'बोलने वाली तसवीर' (Speaking picture) है। 'उर्वशी' की कविता ऐसी ही बोलने वाली तसवीर है—यही उसका सबलतम गुण है।

१. 'आजकल', जनवरी, १९६२, पृ० ३६,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३

काव्य-शिल्प

'उर्वशी' का शिल्प नितान्त उज्ज्वल है। शिष्ट, सुरुचि-पूर्ण एवं सुसंस्कृत पद-संघटना इसका प्रधान आकर्षण है। 'प्रसाद' गुण इसके प्रत्येक पद्य में उच्छलित है। कहीं कोई दुरूहता लक्षित नहीं होती। वस्तुतः इसी जाति की रचना के लिए 'निसर्गोज्ज्वल' विशेषण उपयुक्त होगा जिसे श्रीहर्ष ने गलत ढंग से अपने प्रसिद्ध काव्य 'नैषधचरित' के लिए किया था। मुक्त छन्दोयोजना भी 'उर्वशी' की सुष्ठु एवं लय-पूर्ण हुई है। पद-योजना में कवि प्रायः सावधान रहा है तथा एक विशिष्ट धरातल से स्खलित नहीं होने पाया है। विदेशी शब्दों का प्रयोग शायद खोजने से ही मिले। चित्रात्मकता उसकी भाषा-योजना की सबसे बड़ी विशेषता है। अलंकारों का व्यर्थ का मोह कवि को ग्रसित करते प्रतीत नहीं होता। भावों को सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति देने की सतर्कता अवश्य दृष्टिगोचर होती है। बिम्बों की जो भास्वर मालिका कविता में सजायी गई है, उसमें कल्पना का मोहक रूप प्रकाशित हुआ है। एक बात स्पष्ट कही जा सकती है, यह कि अप्रस्तुतों की योजना में कवि छायावादी मनोभंगी का ही उपासक दिखाई पड़ता है यद्यपि छायावादी कल्पना की कुहेलिका उसके चित्रों की चमक को धूमिल नहीं बनाती।

दिनकर की व्यंजना की अविजेय क्षमता का एक प्रमाण यह है कि जहाँ स्वस्थ-चित्त होने पर हम उनके वक्तव्य से सहमत नहीं हो पाते, वहाँ भी उनकी कला हमें थोड़ी देर के लिये अपनी लपेट में पकड़ ही लेती है। हमने उनके द्वारा परोसी गई दार्शनिकता की दावत में कोई मौलिक रस्यमानता नहीं पाई है, किन्तु वे इतनी खूबी से अपना कथ्य कह जाते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं कि हमारा विवेक तत्काल उनकी कला की माया से अभिभूत हो जाता है। दो-तीन चित्र देखें, तब हमारा मन्तव्य आपको स्पष्ट हो जाएगा।

"महा-शून्य के अन्तर-गृह में, उस अद्वैत-भवन में
जहाँ पहुँच दिक्काल एक हैं, कोई भेद नहीं है।
इस निरभ्र नीलान्तरिक्ष की निर्जर मंजूषा में,
सर्ग-प्रलय के पुरावृत्त जिसमें समग्र संचित हैं।
दूरागत इस सतत-संचरण-मय समीर के कर में,
कथा आदि की जिसे अन्त की श्रुति तक ले जाना है।"

× × ×

"चढ़ असीम उड्डयन भरेगा मन के महा गगन में,
जहाँ त्रिया कामिनी नहीं, प्रार्थना, निदिध्यासन है।"

× × ×

"देह प्रेम की जन्मभूमि है, पर, उसके विचरण की
सारी लीला-भूमि नहीं सीमित है रुधिर-त्वचा तक।
यह सीमा प्रसरित है मन के गहन, गुह्य लोकों में,
जहाँ रूप की लिपि अरूप की छवि आँका करती है,
और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी-मुख-मंडल में
किसी दिव्य, अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है।"

ये चित्र आपको निश्चितरूपेण भ्रम में डाल देंगे—ऐसी है दिनकर की प्रभावशाली व्यंजना। कला का सामर्थ्य भी तो यही है कि वह धोखा देकर आपसे अपना वक्तव्य मनवा ले।

दिनकर की कला ने 'उर्वशी' में सुन्दर सुभाषितों की जगमगाती श्रेणिका सजा दी है। इस दृष्टि से, ये विद्यापति की श्रेणी में उपविष्ट हो सकते हैं। नीचे थोड़े उदाहरण उद्धृत किये गए हैं—

"रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी,
क्योंकि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है।"
"दाह-मात्र ही नहीं, प्रेम होता है अमृत-शिखा भी।"
"सुमन मूक सौन्दर्य और नारियाँ सवाक् सुमन हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"सघन कुंज, गोधूलि, चाँदनी, ये यदि नहीं रहें तो
दिन की खुली धूप में कब तक जीवन चल सकता है ?"

"परामर्श क्यों करें मुक्तिकामी अपने बंधन से ?
गृहिणी की यदि सुने, गेह से कौन निकल सकता है ?"

"नारी क्रिया नहीं, वह केवल क्षमा, क्षान्ति, करुणा है।
इसी लिए इतिहास पहुँचता जभी निकट नारी के,
हो रहता वह अचल या कि फिर कविता बन जाती है।"

"प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो वह क्रीड़ा है;
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीड़ा है।"

"अधर नष्ट होते, मिटती झंकार नहीं चुंबन की।"

डॉ० नगेन्द्र ने दिनकर की 'नंगी अभिव्यक्ति' के कतिपय उदाहरण उद्धृत किये हैं और उनका कारण बताया है, कवि में व्यवहार की भाषा अथवा जन-भाषा का उत्साहातिरेक।[1] किन्तु इस प्रकार के उदाहरण 'उर्वशी' में अत्यन्त कम मिलेंगे।

यह बात दूसरी है कि यदि कवि ने जनपदीय भाषा के इन शब्दों और मुहावरों को बचा दिया होता, तो 'उर्वशी' में सुरुचि एवं शिष्टता के धरातल की आद्योपान्त रक्षा हो गई होती। दिनकर ने निविड़ शृंगारिक अनुभूति को भी, ऐन्द्रियता की कूँची से स्पर्श करते-करते, स्थूलता की खनखनाहट से बचा लिया है। ऐसी अवस्था में, ये जनपदीय प्रयोग आसानी से बचाये जा सकते थे। संभोग-शृंगार का एक निविड़ चित्र इन पंक्तियों में अंकित हुआ है—

"पर मैं बाधक नहीं, जहाँ भी रहो, भूमि या नभ में,
वक्षस्थल पर, इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो, बस, इसी भाँति, उर-पीड़क आलिंगन में
और जलाते रहो अधर-पुट को कठोर चुम्बन से।
किन्तु, आह ! यों नहीं; तनिक तो शिथिल करो बाँहों को;

१. 'आजकल', जनवरी, १९६२, पृ० ३७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निष्पेषित मत करो, यदपि, इस मधु निष्पेषण में भी
मर्मान्तक है शान्ति और आनन्द एक दारुण है।
तुम पर्वत, मैं लता, तुम्हारी बलवत्तर बाँहों में
विह्वल, रस-आकुलित, क्षाम मैं मूर्च्छित हो जाऊँगी।"

किन्तु, दिनकर इस मिलन-मधुरिमा पर जमे नहीं हैं। झटिति उर्वशी हिम-भूषित शृंगों पर प्रसरित ज्योत्स्ना की ओर पुरूरवा का ध्यान आकर्षित कर देती है—

"ना, यों नहीं, अरे, देखो तो उधर, बड़ा कौतुक है।"

इतना ही नहीं, 'मर्मान्तक शान्ति' और 'दारुण आनंद' के उल्लेख से भी इस मिलनानन्द की अनुभूति में बाधा पड़ी है। 'दारुण आनंद' में अंग्रेजी के 'terribly happy' की छाया है, और 'दारुण' विशेषण का प्रयोग विच्छित्तिपूर्ण कहा जा सकता है। किन्तु, 'मर्मान्तक शान्ति' में कवि की अपनी दार्शनिक मनोभंगी की छाया स्पष्ट दिखाई पड़ती है जिसे उसने सहज-मार्गी साधना से गृहीत किया है।

इसी प्रकार, उर्वशी के रूप का एक चित्र यह भी देखिए जिसमें संभोग का आनंद, अमिश्र भाव से, उपप्लवित नहीं हो सका है—

"ये लोचन, जो किसी अन्य जग के नभ के दर्पण हैं;
ये कपोल, जिनकी द्युति में तैरती किरण ऊषा की;
ये किसलय-से अधर, नाचता जिन पर स्वयं मदन है,
रोती है कामना जहाँ पीड़ा पुकार करती है;
ये श्रुतियाँ, जिनमें उडुओं के अश्रु-बिन्दु झरते हैं;
ये बाँहें, विधु के प्रकाश की दो नवीन किरणों-सी;
और वक्ष के कुसुम-कुंज, सुरभित विश्राम-भवन ये,
जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर श्रान्ति दूर करते हैं।"

इस चित्र में तीन प्रकार का आस्वादन रस्यमान है। लोचनों को 'अन्य जग के नभ के दर्पण' बताने में रहस्य की अनुभूति है। कपोलों में ऊषा की किरण के तैरने का कथन कर, विशुद्ध रोमांटिक सौन्दर्य की व्यंजना की गई है; कानों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा बाँहों की कल्पना में भी इसी जाति का सूक्ष्म सौन्दर्य ध्वनित हुआ है। किसलयोपम अधरों पर मदन के नाचने के उल्लेख में सौन्दर्य की उत्तेजकता व्यंग्य है। लेकिन, वक्ष-स्थल पर खिलने वाले दो 'कुसुम-कुंजों' (उरोजों) का आस्वाद इन सबसे निराला बन गया है। ये ऐसे सुगंधित 'विश्राम-भवन' हैं जहाँ 'मृत्यु के पथिक' (मर्त्य मनुज) थोड़ी देर ठहर कर, अपनी जीवन-यात्रा की थकावट मिटाते हैं। इस कथन में न केवल उरोजों की मादकता का ध्वनन है, प्रत्युत यह भाव भी विवक्षित है कि मर्त्य मानव इन्हीं की छाया में शयन कर, थोड़ी देर के लिए, जीवन की विपन्नताओं एवं असफलताओं को भूल जाता है; अर्थात्, इन उरस्यों का केवल रसात्मक मूल्य ही नहीं है, अपितु उपयोगिता-मूल्य भी है! मृत्यु और माधुर्य का यह मिश्रण कुछ विचित्र आस्वाद से मंडित हो गया है। अतएव, यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत रूप-चित्र में विशुद्ध शृङ्गारिक अनुभूति की निविड़ता प्रस्फुटित नहीं हो पाई है।

इसी लिए, मैंने अभी कहा है कि दिनकर चाहते तो वे जनपदीय प्रयोगों से अपनी काव्य-भारती के क्षीरोज्ज्वल मुख को कलंकित होने से एक-दम बचा लेते। 'उर्वशी' में एक प्रयोग, जो बार-बार हुआ है, 'सो' है। ऐसे पंडिताऊ प्रयोग के प्रति कवि का आकर्षण अनुचित प्रतीत होता है। 'बिलाना', 'हेरना', 'जोहना' 'गुनना' इत्यादि पूर्वी प्रयोग भी बचा लिये गए होते तो अच्छा हुआ होता। अंग्रेजी पदावली के अनुवाद का मोह भी कवि संवरण नहीं कर सका है। एक-दो अनुवाद तो सुन्दर एवं प्रसंगानुकूल हुए हैं, जैसे "वाणी का वर्चस्व रजत है, किन्तु मौन कंचन है"; यह अंग्रेजी की कहावत 'Silence is golden while speech is silver" का अनुवाद है। 'Cold glory" के लिए "शीत महिमा" अनुवाद भी सुन्दर बन पड़ा है। लेकिन, जहाँ कवि की अनुभूति की आँच ठंढी पड़ गई है और अंग्रेजी की कोई उक्ति उसके मानस में नाच रही है, वहाँ वह अत्यन्त अलस भाव से अंग्रेजी पदों का अनुवाद प्रस्तुत कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देता है। उदाहरणतः "तुम मेरे प्राणेश, ज्ञान-गुरु, सखा, मित्र, सहचर हो" अंग्रेजी के "Philosopher, friend and guide" का अनुवाद है जो अपने संदर्भ में एक-दम निरर्थक और व्यर्थ की भरती की पंक्ति है।[1] इसी प्रकार का अनुवाद है "चिर-कृतज्ञ हूँ इस कृपालुता के हित" जो अंग्रेजी के "I shall be ever grateful to you for this favour" का रूपान्तर है जिसका उल्लेख एक पूर्व प्रसंग में मैं ऊपर कर आया हूँ। एक-दो स्थलों पर अंग्रेजी शब्दों का ऐसा अक्षरानुयायी अनुवाद हुआ है जो सामान्य हिन्दी पाठक को चकमे में डाल देगा, यथा—"चन्द्राहत"। यह अंग्रेजी "Moon-struck" का अनुवाद है जिसका अर्थ विक्षिप्त अथवा पागल होता है। 'भ्रमाना', 'दीपना' तथा 'निरूपना' जैसे नाम-धातुओं का प्रयोग भी सुविचारित नहीं समझा जाएगा। "शमित-वह्नि" तथा "दग्ध-मल" जैसे बहुव्रीहि समासों का प्रयोग भी बचाना चाहिए था। 'भौतिकोत्तर' के स्थानापन्न रूप में "भूतरोत्तर" का गढ़ना उचित नहीं था। 'जवनिका' को तिरस्कृत कर "यवनिका" का ग्रहण भारतीय नाट्य-कला पर यूनानी प्रभाव की सामान्य भ्रान्ति का परिणाम समझा जाएगा।[2]

---

१. प्रसंग देखिये—

"और मिले जब प्रथम-प्रथम तुम, विद्युत चमक उठी थी
इन्द्रधनुष बन कर भविष्य के नीले अँधियाले पर।
तुम मेरे प्राणेश, ज्ञान-गुरु, सखा, मित्र, सहचर हो;
जहाँ कहीं भी प्रणय सुप्त था शोणित के कण-कण में,
तुमने उसको छेड़ मुझे मूर्च्छा से जगा दिया है॥"

—स्पष्ट है कि ऊपर की दो और नीचे की दो पंक्तियों के बीच में 'प्राणेश, ज्ञानगुरु' वाली पंक्ति भावों की दीप्ति को एकदम मंद कर देती है।

२. देखिए पं० बलदेव उपाध्याय द्वारा लिखित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० ४००-०७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४

संग्राहक प्रतिभा

दिनकर ने 'काव्य के स्वर्ण-राज्यों' में प्रचुर यात्राएँ की हैं।[1] ये यात्राएँ निरर्थक सिद्ध नहीं हुई हैं, अपितु उन्हें उनसे अपनी काव्य-सरस्वती को सजाने-सँवारने में प्रभूत सहायता मिली है। दिनकर की संग्राहक प्रतिभा विलक्षण है और हिन्दी कवियों में केवल रीतिकाल के शृङ्गार बिहारीलाल ही इस दिशा में उनसे स्पर्धा कर सकते हैं। अश्वघोष के अनुकरण पर पुरूरवा संन्यासी बन गया है। सम्भव है, जैन काव्यों का भी प्रभाव इसमें पड़ा हो। स्वप्न का टेकनीक अपभ्रंश रचनाओं तथा सूरसागर में भी अपनाया गया है; 'कामायनी में श्रद्धा ने भी स्वप्न देखा है। पुरूरवा का स्वप्न इसी स्वप्न-परम्परा की कड़ी है। कालिदास ने तो दिनकर का पथ-प्रदर्शन ही किया है जिसे दिनकर ने, 'विक्रमोर्वशीय' की कतिपय पंक्तियों को अपने कतिपय प्रसंगों के आरम्भ में उद्धृत कर, परोक्षतया स्वीकार भी किया है। उदाहरणार्थ निम्नोल्लिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'विक्रमोर्वशीय' का एक श्लोक है :

"साधारणोऽयमुभयो प्रणयः स्मरस्य
तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम्।"

दिनकर ने इसी भाव को यों कहा है—

"धुआँ नहीं, ज्वाला देखी है,
ताप उभयदिक् सम है।"

शकुन्तला के पवित्र रूप की व्यंजना के लिए कालिदास ने

---

1. "Much have I travell'd in the realms of gold." (Keats).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"अखण्डं पुण्यानां फलमिव च" की अप्रस्तुत-योजना की[1]; दिनकर ने उर्वशी के लिए "तपःपूत नर के समस्त संचित तप की आभा-सी" का कथन किया है। दुष्यन्त को शकुन्तला के उत्फुल्ल यौवन से आकर्षित होकर, लुभावने कुसुम का स्मरण हो आया—"कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्"; दिनकर का पुरूरवा अनपेक्षित रीति से, यों-ही, तर्क के सिलसिले में जहाँ कुसुम-कामिनी की तुलना एकदम अनाहूत (uncalled for) है, कुसुम और कामिनी की समता प्रदर्शित करने लगता है—

"कुसुम और कामिनी, बहुत सुंदर दोनों होते हैं,
पर, तब भी नारियाँ श्रेष्ठ हैं कहीं कान्त कुसुमों से,
क्योंकि पुष्प हैं मूक और रूपसी बोल सकती है,
सुमन मूक सौन्दर्य और नारियाँ सवाक् सुमन हैं।"

इस कथन में कालिदास के "कुसुममिव लोभनीयं यौवनम्" का आकर्षण दिनकर के मानस में क्रिया-शील था, और इसी लिए उन्होंने, संदर्भ का अनुरोध नहीं होने पर भी, कुसुम और कामिनी की तुलना का यह चित्र उपस्थित कर दिया। श्रेष्ठ कविराज किस प्रकार परवर्ती कवियों को बलात् अपनी माया में लपेट लेते हैं, इसका सुंदर उदाहरण 'उर्वशी' की ये पंक्तियाँ हैं।

दुष्यंत ने शकुंतला के अलौकिक रूप-सौन्दर्य को देखकर, अनुमान किया था कि ऐसा मनोहर रूप मानवियों में सम्भव नहीं हो सकता और ऐसी प्रभा-तरल ज्योति पृथिवी-तल से उत्पन्न नहीं हो सकती—

"मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥"

---

१. "अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कालिदास से यह भाव ग्रहण कर, दिनकर ने उर्वशी के रहस्यमय रूप की अलौकिकता का यों कथन किया है—

"यह रहस्यमय रूप कहीं त्रिभुवन में और नहीं है,
सुर-किन्नर-गन्धर्व-लोक में अथवा मर्त्य-भुवन में।
तुम कैसे, तब कहो, भला उस भाँति जनम सकती हो
जैसे जग में अन्य, अपर सौन्दर्य जन्म लेते हैं ?"

दुष्यन्त ने शकुंतला के रूप को विधाता की मानसी सृष्टि बताते हुए कहा कि उसकी रचना में मानो संसार के सकल सौन्दर्य के संकलन का उपयोग किया गया है—

"चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥"

कालिदास के इस भाव को अवलम्बन कर, दिनकर ने उर्वशी को 'निखिल भुवन की आभा' तथा 'स्रष्टा के मन की पवित्र कल्पना' बना दिया है—

"नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है निखिल भुवन की;
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की।"

'विक्रमोर्वशीय' में "कवि-कुल-गुरु" ने यह कल्पना की कि उर्वशी का सौन्दर्य चन्द्रमा अथवा वसन्त अथवा कामदेव ने रचा होगा और यह कहा कि वेदों के अनुशीलन से जड़ीभूत वृद्ध ऋषि नारायण ऐसे सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकते थे—

"अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥"

इस चित्र से प्रेरणा ग्रहण कर, दिनकर ने कालिदास के भाव को उलट दिया है और उर्वशी को नारायण मुनि की सौन्दर्य-समाधि की श्रेष्ठ प्रसूति बताया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"अथवा जब अरूप सुषमा को रूपायित करने को
ऋषि सौन्दर्य-समाधि बाँध, तन्मय छवि के चिंतन में,
बैठे थे निश्चेत, तभी नारी बन निकल पड़ीं तुम
नारायण की महा कल्पना से, एकायन मन से।"

'उर्वशी' के

"पढ़ो रक्त की भाषा को, विश्वास करो इस लिपि का;
यह भाषा, यह लिपि मानस को कभी नहीं भरमाएगी।"

वाले कथन पर कालिदास की निम्नोद्धृत पंक्तियों का प्रभाव एक पूर्व प्रकरण में पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है—

"असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥"

अतएव, 'उर्वशी' के माधुर्य-पक्ष को सँवारने में कालिदास का ऋण सबसे बड़ा है। किन्तु, हिन्दी कवियों में विद्यापति, जायसी, सूर इत्यादि ने भी दिनकर को प्रभावित किया है। "आँख मूँद रस-मग्न प्रणय-पीड़न" सहने में विद्यापति की 'सुनारी' की याद आ जाती है, जिसका विश्वास है—"तिला एक मूनि रहु दुनयान, रोगि करए जइसे औषध पान।" उर्वशी के चलने तथा खड़े होने से दिनकर ने मूँगों एवं श्वेत फूलों के उत्पन्न होने का उल्लेख किया है, यथा—

"पग पड़ते ही फूट पड़े विद्रुम-प्रवाल धूलों से,
जहाँ खड़ी हो, वहीं व्योम भर जाय श्वेत फूलों से।"

इस चित्र की प्रेरणा विद्यापति की निम्न पंक्तियों से मिली है—

"जहाँ-जहाँ पग जुग धरई। तहिं-तहिं सरोरुह झरई ॥
जहाँ-जहाँ झलकत अंग। तहिं-तहिं बिजुरि-तरंग ॥"

दिनकर की उर्वशी पुरूरवा से कहती है—

"किन्तु, आह ! यों नहीं; तनिक तो शिथिल करो बाहों को,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निष्पेषित मत करो ………………………… ।"

उर्वशी के इस कथन में जायसी की पद्मावती के इस अनुरोध का स्पष्ट ध्वनन है—"चाखु, पिया ! मधु थोरैं थोरा ।" उर्वशी के रूप की जो रहस्यमय कल्पना दिनकर ने की है, उसमें जायसी द्वारा भावित पद्मावती के रूप-सौन्दर्य की स्पष्ट प्रेरणा दिखाई पड़ती है जिसके सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने यह टिप्पणी की है : "पद्मावती का रूप वर्णन करते-करते किस अनंत सौन्दर्य-सत्ता की ओर कवि की दृष्टि जा पड़ी है ! जिसकी भावना संसार के सारे रूपों को भेदती हुई उस मूल सौन्दर्य-सत्ता का कुछ आभास पा चुकी है, वह सृष्टि के सारे सुंदर पदार्थों में उसी का प्रतिबिम्ब देखता है ।"[1] जायसी और दिनकर की दृष्टियों में अन्तर यह है कि जहाँ जायसी ने ध्वनि अथवा व्यंजना का आश्रय लिया है, वहाँ दिनकर ने अभिधा का अवलम्बन कर अपनी पूरी 'थीसिस' का विजृम्भण कर दिया है।

सूर का 'गूँगे का गुड़' पुरूरवा द्वारा परिभाषित प्रणय-भोग के लोकोत्तर आनन्द में यों प्रतिबिम्बित हो गया है—

"शब्द नहीं है; यह गूँगे का स्वाद, अगोचर सुख है;
प्रणय-प्रज्वलित उर में जितनी झंकृतियाँ उठती हैं,
कह-कर भी उनको कह पाते कहाँ सिद्ध प्रेमी भी ?
भाषा रूपाश्रित, अरूप है यह तरंग प्राणों की ।"

चतुर्थ अंक में चित्रलेखा ने प्रेम के द्विविध रूपों का जो उल्लेख किया है, उसमें रसखानि का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। चित्रलेखा कहती है कि एक प्रेम वह है जो विधु के समान आकाश में उठता जाता है और दूसरा प्रेम वह है जिसके रसालोडन में पड़ कर, दो मन ही नहीं, दो तन भी मिलकर एक हो जाते हैं—

"और दूसरा वह, पड़कर जिसके रस-आलोडन में
दो मानस ही नहीं, एक दो तन भी हो जाते हैं ।"

---

१. जायसी-ग्रंथावली की भूमिका ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रेम-परिभाषण में रसखानि के निम्न दोहों का भाव, प्रायः अविकल रूप से, गृहीत हुआ है—

"अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहूँ जहँ एक मन मिलाइ महबूब॥
दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि।
होइ जबै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि॥"

(प्रेम-बाटिका)

रीति-कालीन कवियों का प्रभाव सामान्यतः 'उर्वशी' के चित्रों में दृष्टिगोचर नहीं होता। छायावादी मनोदृष्टि मूर्त्त के लिए अमूर्त्त की योजनाओं में 'झलकें मारती है।' "रूप की उज्ज्वल झंकारें" जैसे प्रयोग छायावादी संस्कार का विज्ञापन करते हैं।[1] प्रसाद की 'कामायनी' की छापें 'उर्वशी' में कई स्थलों में स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। नीचे कुछ उदाहरण दिये गए हैं।

(१) "विश्वदेव, सविता या पूषा
सोम, मरुत, चंचल पवमान;
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान ?" ('कामायनी')

"जिसकी इच्छा का प्रसार भूतल, पाताल, गगन है,
दौड़ रहे नभ में अनंत कन्दुक जिसकी लीला के
अगणित सविता-सोम, अपरिमित ग्रह, उडु-मंडल बनकर।"
('उर्वशी')

(२) "महा नील इस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते-से संधान !" ('कामायनी')

"महाशून्य के अन्तर-गृह में, उस अद्वैत-भवन में
जहाँ पहुँच दिक्काल एक हैं, कोई भेद नहीं है।

१. "कवि हो रहता लीन रूप की उज्ज्वल झंकारों में।" (पृष्ठ ६२)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस निरभ्र नीलान्तरिक्ष की निर्जर मंजूषा में,
सर्ग-प्रलय के पुरावृत्त जिसमें समग्र संचित हैं।"
('उर्वशी')

(३) "चाहती नहीं जागरण कभी
सपने की इस गहराई में।" ('कामायनी')

"दिन की खुली धूप में कब तक जीवन चल सकता है ?"
('उर्वशी')

(४) "नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास-रजतनग-पगतल में;
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।
× × ×
आँसू से भींगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा;
तुमको अपनी स्मित-रेखा से
यह सन्धि-पत्र लिखना होगा !" ('कामायनी')

"अपनी सहज भूमि नारी की धूप नहीं छाया है।
इतिहासों की सकल दृष्टि केन्द्रित, बस एक क्रिया पर
किन्तु, नारियाँ क्रिया नहीं, प्रेरणा, प्रीति, करुणा हैं;
× × × ×
और साँझ के समय पुरुष जब आता लौट समर से,
दिन भर का इतिहास कौन उसके मुख से सुनती है
कभी मंद स्मिति-सहित, कभी आँखों में अश्रु बहा कर ?"
× × × ×
इसीलिए इतिहास पहुँचता जभी निकट नारी के,
हो रहता वह अचल या कि फिर कविता बन जाता है।"
('उर्वशी')

ध्यातव्य : नारी-विषयक कथन जो 'कामायनी' में अंकित हैं, उनसे 'उर्वशी' के कथन में तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है। दिनकर की 'प्रेरणा, प्रीति एवं करुणा' प्रसाद की 'श्रद्धा', 'विश्वास'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा 'पीयूष-स्रोत' के ही रूपान्तर हैं। प्रसाद ने जहाँ स्वीकारात्मक ढंग से कहा कि नारी केवल श्रद्धा है, वहाँ दिनकर ने निषेधात्मक रूप में कहा है कि नारी क्रिया नहीं है। प्रसाद ने कहा कि नारी को 'सन्धि-पत्र' लिखना होगा। 'संधि-पत्र' में संघर्ष एवं इतिहास दोनों का अन्तर्भाव है। दिनकर ने 'समर से लौटने' तथा 'दिन-भर का इतिहास सुनने' का स्पष्ट उल्लेख किया है और 'सन्धि-पत्र' की व्यंजना को पूर्ण करने के लिए कह दिया है कि इतिहास नारी के निकट जाकर कविता बन जाता है। प्रसाद ने 'आँसू से भींगे अंचल' तथा 'स्मित-रेखा' का उल्लेख किया तो दिनकर ने लिखा है : "कभी मन्द स्मिति-सहित, कभी आँखों में अश्रु बहा कर।" इस प्रकार, सजग पाठकों को यह समझते देर नहीं लगेगी कि दिनकर ने नारी की प्रशस्ति गाने में प्रसाद से प्रेरणा ग्रहण की है।[1]

(५) "और एक फिर व्याकुल चुम्बन
रक्त खौलता जिससे;
शीतल प्राण धधक उठता है
तृषा-तृप्ति के मिस से।" ('कामायनी')

"पर, सोचो तो, मर्त्य मनुज कितना मधु-रस पीता है!
दो दिन ही हो, पर, कैसे वह धधक-धधक जीता है।"
('उर्वशी')

(६) "यह जलन नहीं सह सकता मैं
चाहिए मुझे मेरा ममत्व;

---

१. प्रसाद की ये पंक्तियाँ भी देखें जिनसे दिनकर के प्रेरणा-ग्रहण करने की बात और भी स्पष्ट होगी—

"नारी माया-ममता का बल,
वह शक्तिमयी छाया शीतल;
फिर कौन क्षमा कर दे निश्छल,
जिससे यह धन्य बने भूतल।" ('कामायनी')

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्त्व।
यह द्वैत अरे यह द्विविधा तो
है प्रेम बाँटने का प्रकार!
भिक्षुक मैं ? ना, यह कभी नहीं
मैं लौटा लूँगा निज विचार।" ('कामायनी')

"नारी बन जो स्वयं पुरुष को उद्वेलित करता है
और वेधता पुरुष-कान्ति बन हृदय-पुष्प नारी का।"
"पर, मन ने टोका, 'क्षत्रिय भी भीख माँगते हैं क्या ?
और प्रेम क्या कभी प्राप्त होता है भिक्षाटन से' ?"
('उर्वशी')

ध्यातव्य : मनु कहते हैं कि मैं पंचभूत की सृष्टि में एक तत्त्व बन कर रमण करना चाहता हूँ। पुरूरवा मनु के इस कथन की व्याख्या कर देता है कि एक ही तत्त्व नारी-रूप में पुरुष को और पुरुष-रूप में नारी को वेधता तथा उद्वेलित करता है। मनु कहते हैं कि यदि श्रद्धा ने स्वतः उन्हें प्रेम का दान नहीं दिया, तो वे उससे उसकी भिक्षा नहीं माँग सकते। पुरूरवा कहता है कि उसके मन ने चेतावनी दी कि क्षत्रिय भीख नहीं माँगता। मनु कहते हैं कि यदि श्रद्धा उनसे वह द्वैत-भाव रखती है, तो उससे प्रेम बँट जाएगा। पुरूरवा कहता है कि भीख माँगने से प्रेम नहीं मिलता। पाठक आसानी से देख सकेंगे कि मनु और पुरूरवा के कथनों में बिंब-प्रतिबिंब भाव स्पष्ट झलकता है।

(७) "पर तुमने तो पाया सदैव उसकी सुन्दरता जड़ देह-मात्र,
सौन्दर्य्य-जलधि से भर लाये केवल तुम अपना गरल पात्र,
तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके,
परिणय जिसको पूरा करता उससे तुम अपने आप रुके।"
('कामायनी')

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"देह प्रेम की जन्म-भूमि है, पर, उसके विचरण की
सारी लीला-भूमि नहीं सीमित है रुधिर-त्वचा तक।
यह सीमा प्रसरित है मन के गहन, गुह्य लोकों में,
जहाँ रूप की लिपि अरूप की छबि आकाँ करती है।"
('उर्वशी')

(८) "तुम राग-विराग करो सबसे अपने को कर शतशः विभक्त।"
('कामायनी')

"राग-विराग दुष्ट दोनों, दोनों निसर्ग-द्रोही हैं।" ('उर्वशी')

(६) "कोटि-कोटि नक्षत्र शून्य के महाविवर में,
लास रास कर रहे लटकते हुए अधर में।" ('कामायनी')

"अतल, अनादि, अनंत, पूर्ण, बृंहित, अपार अंबर में
सीमा खींचें कहाँ? निमिष, पल, दिवस, मास, संवत्सर
महाकाश में रँगे काल के लक्तक-से लगते हैं।"
('उर्वशी')

(१०) "मैं शासक, मैं चिर स्वतंत्र; तुम पर भी मेरा-
हो अधिकार असीम, सफल हो जीवन मेरा।"
('कामायनी')

"मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं,
उर्वशी! अपने समय का सूर्य हूँ मैं।" ('उर्वशी')

ऊपर दिये गए उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर ने 'कामायनी' के चित्रणों से प्रचुर प्रेरणा प्राप्त की है। मेरी धारणा है कि कालिदास के बाद 'उर्वशी' के प्रणयन में सबसे अधिक प्रभाव 'कामायनी' का ही रहा है। दिनकर ने भूमिका में मनु और श्रद्धा तथा मनु और इड़ा के उपाख्यानों का उल्लेख किया है। उससे भी स्पष्ट है कि 'कामायनी' के चित्रण उनके मानस-सरोवर में तैर रहे थे। इड़ा को लेकर प्रसाद ने बुद्धि के विषय में जो कथन किया है, उनका परोक्ष प्रभाव 'उर्वशी' के तीसरे अंक में उल्लिखित रक्त एवं बुद्धि के तुलनात्मक विवेचन में साफ झलकता है—दिनकर ने अपने वक्तव्य के अनुकूल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिवर्तन किया है, यह भिन्न बात है। प्रसाद ने 'आनंद' शीर्षक अन्तिम प्रकरण में कामायनी को "जगत की मंगलमयी कामना" बता कर, कहा है—"वह विश्व-चेतना पुलकित थी, पूर्णकाम की प्रतिमा" और बाद को उसे "विश्व-सुंदरी" की आख्या से विभूषित किया है। दिनकर ने उर्वशी के आत्म-विज्ञापक उद्गारों में प्रसाद के 'विश्व-चेतना', 'विश्व-सुंदरी' तथा 'पूर्णकाम की प्रतिमा' वाले त्रिविध तत्त्वों पर, अपने ढंग से, अपनी प्रतिभा के सुवर्ण की खोल चढ़ा दी है और 'कामायनी' के क्षीण सूत्रों का रमणीय भाष्य प्रस्तुत किया है : "मैं भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त; मैं विश्व-प्रिया।" उर्वशी की परम्परा-सिद्ध रोमांटिक, स्वच्छन्द प्रकृति को ध्यान में रख कर, दिनकर ने उसे यदि 'कृत्रिम बाधा' से विमुक्त कर दिया है, तो सुकन्या-द्वारा निरूपित नारी के महत्त्व में कामायनी की संपूर्ण विशेषताओं को गृहीत भी कर लिया है।

दिनकर अंग्रेजी कविता के भी अनुरागी हैं शेक्सपियर, कीट्स तथा टेनीसन के प्रभावों की स्पष्ट छायाएँ 'उर्वशी' में वर्तमान हैं। शेक्सपियर की प्रसिद्ध उक्ति, जिसमें कवि, प्रेमी और पागल समान जाति के बताये गए हैं, दिनकर ने गृहीत कर ली है, केवल 'पागल' को हटा दिया है। यह अवश्य कहना चाहिए कि उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से शेक्सपियर की कल्पना का उपयोग किया है। संबद्ध पंक्तियाँ देखिए—

"नर समेट रखता बाँहों में स्थूल देह नारी की,
शोभा की आभा-तरंग से कवि क्रीड़ा करता है।
तन्मय हो सुनता मनुष्य जब स्वर कोकिल-कंठी का,
कवि हो रहता लीन रूप की उज्ज्वल झंकारों में।

× × ×

कवि, प्रेमी एक ही तत्त्व हैं, तन की सुन्दरता से
दोनों मुग्ध, देह से दोनों बहुत दूर जाते हैं,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस अनंत में जो अमूर्त्त धागों से बाँध रहा है
सभी दृश्य सुषमाओं की अविगत, अदृश्य सत्ता से।"

कालिदास और प्रसाद के समान, कीट्स ने भी 'उर्वशी' के प्रणयन में पुष्कल प्रेरणा एवं सहायता पहुँचाई है। 'उर्वशी' की रोमांटिक भाव-धारा की सजावट अथवा प्राण-प्रतिष्ठा में कीट्स का सहयोग अत्यन्त मूल्यवान् रहा है। हमने पहले दिखाया है कि अप्सराओं के शील-निरूपण में उसकी प्रसिद्ध रचना 'निर्मम सुन्दरी' (La belle dame sans merci) का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। पुरूरवा की निम्नोद्धृत दो अभ्युक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"इस प्रदीप्त निश के अंचल में जो आप्रलय निरंतर,
इसी भाँति, सुनती जायेगी कूजन गूढ़-प्रणय का।"
"अधर नष्ट होते, मिटती झंकार नहीं चुंबन की।"

इन पंक्तियों की भाव-धारा में कीट्स की निम्नोद्धृत पंक्तियों का स्पष्ट ध्वनन है—

"A thing of beauty is a joy for ever :
Its loveliness increases; its will never
Pass into nothing-ness."

(Endymion, Book I.)

"Still would'st thou sing, and
I have ears in vain—
To thy high requiem become a sod.

× × × ×

Thou wast not born for death,
inmortal Bird !
No hungry generations tread thee down."

(Ode To A Nightingale.)

'उर्वशी' के प्रथम अंक में, रंभा ने उर्वशी के पुरूरवा के प्रेम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में फँसने पर यह टिप्पणी करते हुए कि अब अप्सराएँ भी 'प्रेम-देवता' का पूजन करेंगी और 'धरती' के समस्त कष्टों एवं विपदाओं का वरण करेंगी, पृथिवी के जीवन का यों अनुवचन किया है—

"जहाँ प्रेम राक्षसी भूख से क्षण-क्षण अकुलाता है,
प्रथम ग्रास में ही यौवन की ज्योति निगल जाता है;
धर देता है भून रूप को दाहक आलिंगन से,
छवि को प्रभा-हीन कर देता ताप-तप्त चुम्बन से;
पतझर का उपमान बना देता बाटिका हरी को,
और चूमता रहता फिर सुन्दरता की ठठरी को।"

इन पंक्तियों का बिंब-प्रतिबिंब भावसादृश्य कीट्स की निम्नोल्लिखित पंक्तियों के साथ देखा जा सकता है—

"Fade far away, dissolve, and quite forget
What thou among the leaves hast never known,
The weariness, the fever, and the fret
Here, where men sit and hear each other groan;
Where palsy shakes a few, sad, last gray hairs,
Where youth grows pale, and
spectre-thin, and dies;

× × × ×

Where Beauty cannot keep her lustrous eyes,
Or new Love pine at them beyond tomorrow."
(Ode To A Nightingale)

कीट्स ने अपनी प्रसिद्ध प्रेम-कविता 'The Eve of st. Agnes' में प्रेमिका मैडेलाइन के सौन्दर्य-निरूपण तथा उसके प्रणयि-गत अनुष्ठान में उद्दीपकता के साथ पवित्रता का भी मंजुल पाणिग्रहण कराया है। वहाँ अनुष्ठान में निमग्न, सोई हुई नवतरुणी के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए, कीट्स ने उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसी प्रार्थना-पुस्तक से उपमित किया है जिसके पृष्ठ समेट दिये गए हों : "Clasp'd like a missal where swart Paynims pray."[1] उर्वशी को पुरूरवा अपने परिरंभ-पाश में कसे हुए हैं, किन्तु वह विशुद्ध प्रणय-रस का भोग नहीं कर पाता क्योंकि उसकी मनोदृष्टि किसी अरूप सत्ता की भावना में उलझ जाती है। पुरूरवा की इस द्विधा-ग्रस्त मनोदशा पर उर्वशी यों टिप्पणी करती है—

"क्षण में प्रेम अगाध, सिन्धु हो जैसे आलोडन में।
और वह शान्ति नहीं जब पत्ते भी हिलते हैं॥
× × × ×
और अभी यह भाव, गोद में पड़ी हुई मैं जैसे।
युवती नारी नहीं, प्रार्थना की कोई कविता हूँ॥"

इन पंक्तियों की 'प्रार्थना की कविता' कीट्स के "Clasped like a missal" का ही अनुवाद है।

अंग्रेजी कवियों में, जैसा अभी कहा है, कीट्स का ही प्रभाव सर्वाधिक है। लेकिन, अन्य कवियों से भी, जाने-अनजाने, दिनकर ने प्रभाव ग्रहण किया है पुरूरवा के इस कथन में कि "मैं ही मध्याह्न-गगन में सदा क्यों तपता रहूँ, नये सूर्य को क्षितिज छोड़कर नभ में आने दो," टेनीसन के "Old order changeth yielding place to new" की छाया वर्तमान है। तीसरे अंक में उर्वशी और पुरूरवा ने "काल-देवता के महान् प्रांगण" का जो वर्णन किया है, उसमें ईलियट की प्रसिद्ध कविता "फ़ोर कार्टेट्स" की छाप अंकित दिखाई पड़ती है। चौथे अंक में सुकन्या ने च्यवन के शिशु-विषयक विचारों का जो कथन किया है, उसमें प्लैटो के सुपरिचित 'प्रागजन्म सिद्धान्त' के साथ-साथ, वर्डसवर्थ की प्रसिद्ध कविता 'इम्मार्टैलिटी ओड' की प्रत्यक्ष ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं।

---

१. 'Missal' का अर्थ होता है 'प्रार्थना की पुस्तक'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उर्वशी की प्राण-प्रतिष्ठा में कवीन्द्र-रवीन्द्र के प्रभाव का उल्लेख न करना भी उचित नहीं होगा। उर्वशी के निजी उद्गारों में रवीन्द्र की 'उर्वशी' की झंकृतियाँ क्वणित होती हैं। रवीन्द्र ने नारी को 'अर्धस्वप्न एवं अर्धसत्य' बताया है। पुरूरवा ने भी उर्वशी को इसी मनोभंगी में परिभाषित किया है: "रक्त-मांस की मूर्त्ति नहीं, वह सपना है, छाया है।" गीता तथा उमर खैय्याम के प्रभावों का कथन एक पूर्व प्रकरण में पहले ही किया जा चुका है। उर्वशी-पुरूरवा के प्रणय के पूरे स्वरूप में भारतीय तांत्रिक साधना की स्पष्ट प्रेरणा वर्तमान है। दिनकर ने सहजमार्गी साधना का प्रभाव स्वयं परोक्षतया भूमिका में स्वीकार भी किया है। इस संबंध में मैं डॉ० राधाकमल मुकर्जी द्वारा प्रणीत पुस्तक 'The Horizon of Marriage' के पृष्ठ ३१३ से ३३३ तक की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कराना पसंद करूँगा जिनके अवलोकन से दिनकर की दार्शनिक भाव-भूमि के समझने में सहायता मिलेगी तथा 'उर्वशी' की निम्नोद्धृत पंक्तियों का महत्त्व भी प्रकट हो जाएगा[1]—

"यह अतिक्रान्ति वियोग नहीं, शोणित के तप्त ज्वलन का।
परिवर्तन है स्निग्ध, शान्त दीपक की सौम्य शिखा में॥

निन्दा नहीं, प्रशान्ति प्रेम की; छलना नहीं, समर्पण,
त्याग नहीं, संचय; उपत्यकाओं के कुसुम-द्रुमों को,
ले जाना है यह समूल नगपति के तुंग शिखर पर,
वहाँ जहाँ कैलास-प्रान्त में शिव प्रत्येक पुरुष है,
और शक्तिदायिनी शिवा प्रत्येक प्रणयिनी नारी।"

'उर्वशी' की प्रेरणाओं एवं प्रभावों का दिग्दर्शन कराने में हमारा उद्देश्य उसके महत्त्व का अवमूल्यन करना नहीं रहा है।

---

१. डॉ० मुकर्जी की प्रस्तुत पुस्तक एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, द्वारा फरवरी, १९५७ ईसवी में प्रथम बार प्रकाशित हुई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिनकर ने जिस कौशल तथा जिस परिमार्जित सुरुचि के साथ विभिन्न स्रोतों से अपने सूत्र संकलित किये हैं, वे निश्चिततया अभ्यर्थनीय हैं और सौ बात की एक बात यह है कि दिनकर का प्रजापतित्व, अत्यन्त क्षीरोज्ज्वल रूप में, 'उर्वशी' के काव्य-संसार में उद्भासित हुआ है—

"अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथैतत् प्रतिपद्यते ॥"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९

मूल्यांकन

'उर्वशी' के मूल्यांकन का प्रश्न अत्यन्त सुकुमार है। सु-प्रसिद्ध समीक्षक मैथ्यू अर्नोल्ड ने अपने निबंध 'कविता का अध्ययन' (The Study of Poetry) में तीन प्रकार के मूल्यांकनों का उल्लेख किया है, यथा—ऐतिहासिक मूल्यांकन (Historic Estimate), वैयक्तिक मूल्यांकन (Personal Estimate) और तात्त्विक मूल्यांकन (Real Estimate)। ऐतिहासिक मूल्यांकन में किसी रचना का, उस भाषा एवं साहित्य के विकास-क्रम को ध्यान में रखते हुए, महत्त्व स्थिर किया जाता है। वैयक्तिक मूल्यांकन में भावक अथवा आलोचक की व्यक्तिगत रुचियों एवं संबंधों का निर्णायक महत्त्व है। इस प्रकार, ये दोनों मूल्यांकन सदोष होते हैं क्योंकि इनमें तटस्थ परीक्षण-दृष्टि का उपयोग संभव नहीं होता। इसी कारण, अर्नोल्ड ने तात्त्विक मूल्यांकन को महत्त्व दिया है क्योंकि इसमें पूर्ण निस्संगता के साथ यह स्थिर किया जाता है कि कोई काव्य-कृति किस परिमाण में हमें 'सर्वोत्तम' भाव अथवा विचार प्रदान करती है तथा किस परिमाण में उससे हमें 'शक्ति एवं आनंद' उपलब्ध होते हैं।[1] 'उर्वशी' के मूल्यांकन की समस्या सुकुमार है, इस कारण कि उसका कवि हमारा प्रिय-प्रशंसित है और अपनी लेखनी एवं वाणी से हिन्दी-भारती के परिष्कार, प्रोत्साहन एवं परि-प्रसार के लिए अनवरत परिश्रम कर रहा है। सुतरां, 'उर्वशी' के मूल्यांकन के वैयक्तिक बन जाने की संभावना बनी हुई है और हम अतिरंजित अर्चना की आरती उतारने के प्रलोभन में आसानी से पड़ सकते हैं। ऐतिहासिक मूल्यांकन

1. Essays in Criticism',, Seccnd Series, 1938, पृष्ठ ४.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का प्रश्न शायद नहीं उठता, नहीं उठना चाहिए क्योंकि आज हमारा काव्य-साहित्य शताब्दियों के अभ्यास के बाद, इतना पुष्कल एवं समृद्ध हो चुका है कि ऐतिहासिक दृष्टि निरर्थक-सी बन जाती है। अतएव, 'उर्वशी' का, जैसे सामान्यतः किसी भी रचना का, तात्त्विक मूल्यांकन ही अपेक्षणीय एवं स्पृहणीय होना चाहिए।

तात्त्विक मूल्यांकन में अर्नोल्ड ने दो तत्त्वों पर बल दिया है—प्रथम, 'सर्वोत्तम' तथा द्वितीय, 'शक्ति एवं आनंद की उपलब्धि'।[1] 'सर्वोत्तम' का तत्त्व पुनः व्यक्तिगत रुचि पर आधारित हो सकता है। अतएव, मेरी निजी दृष्टि में इस पर बल न देकर यही निर्णय करना वांछनीय होगा कि 'उर्वशी' के अनुशीलन से हमें कितनी शक्ति एवं कितना आनंद मिलता है; अस्तु।

'शक्ति' स्वीकारात्मक (पौजिटिव) उपलब्धि है। कला एवं कविता के क्षेत्र में यह आभ्यन्तरिक होती है। जीवन की जटिलताओं एवं कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने अथवा उनका साहस-पूर्ण सामना करने में हमारी अन्तरात्मा को कितना बल मिलता है, कितनी स्फूर्ति एवं प्रेरणा मिलती है, यही किसी रचना के तात्त्विक मूल्यांकन में निर्णायक सिद्धान्त हो सकता है। 'उर्वशी' का नायक पुरूरवा, "मर्त्यमानव की विजय का तूर्य" होने पर भी, इस प्रकार द्विधा-ग्रस्त बन गया है कि वह देवताओं से अपनी प्रियतमा के उद्धार का सम्यक् संकल्प नहीं कर पाता और कुल-प्रारब्ध की अदृश्य वाणी पर संन्यास ग्रहण कर लेता है। इतना ही नहीं, वह काम का समुचित उपभोग

---

1. "Yes; constantly, in reading poetry, a sense for the best, the really excellent, and of the strength and joy to be drawn from it, should be present in our minds and should govern our estimate of what we read". (M. Arnold).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी नहीं कर सका है। 'उर्वशी' में एक ही पुरुषार्थ काम का वैभव चित्रित हुआ है। अतएव, काम के समुचित उपभोग एवं उसकी उत्साह-वर्धक परिणति की सीमा के भीतर ही, हम 'उर्वशी' से शक्ति प्राप्त करने की बात सोच सकते हैं। यहाँ निस्संकोच कहा जा सकता है कि वह सीमित शक्ति भी हमें उसमें उपलब्ध नहीं होती। पुरूरवा की प्रव्रज्या हमें साहसिक प्रणयी भी नहीं बनने देती, नारी के सौन्दर्य एवं माधुर्य का उचित सम्मान भी नहीं करने देती। 'मृषा बन्ध विक्रम-विलास का, मृषा मोह-माया का"—'विक्रम-विलास' का बंधन तो व्यर्थ हो ही गया, 'मोह-माया' का बन्धन भी व्यर्थ हो गया है। तो, पुरूरवा के संन्यास ने न तो हमें विक्रमी बनने दिया, न प्रणयी अथवा प्रणयी की वांछनीय परिणति सद्गृहस्थ पिता ही। देखें, वह स्वयं क्या कहता है—

"भाग्य-दोष ! सध सका नहीं मुझ से कर्त्तव्य पिता का।"

पुरूरवा भाग्य पर समस्त दोष आरोपित कर, अपने दायित्व से पलायन कर गया है। अतएव, उसके आचरण से हमें शक्ति नहीं प्राप्त होती।

अब, अन्य दृष्टि से भी विचार कर लीजिए। क्या पुरूरवा दार्शनिक है ? दर्शन से भी आध्यात्मिक शक्ति मिलती है। यहाँ भी स्पष्ट कहा जा सकता है कि पुरूरवा प्रकृत दार्शनिक नहीं है, अपितु 'इमिटेशन' दार्शनिक है—'गोल्ड' नहीं, 'इमिटेशन गोल्ड।' दर्शन में विचारों की जो सुलझी हुई श्रृंखला होती है, एक निश्चित प्रतिमान वा मूल्यविधान पर रहने की जो प्रतिज्ञा होती है, उसका पुरूरवा में अभाव है। उर्वशी को परिरंभ-पाश में बाँधे रहने पर भी, कभी सौन्दर्यशालिनी नवांगना समझना और कभी प्रार्थना की कविता समझना—विक्षिप्तों का-सा व्यापार है, सुलझे हुए दार्शनिक का नहीं। यदि आप कहें कि पुरूरवा को द्विधा-ग्रस्त दिखलाना कवि का उद्देश्य है, तो मैं कहूँगा कि "दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।" उस द्वन्द्व का चित्रण कविता में इस ढंग से हुआ है कि पुरूरवा दार्शनिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी नहीं बन सका है। अप्रिय सत्य कहने की अनुमति मिले तो मैं यही कहूँगा कि दिनकर ने अपनी अर्ध-पाचित (ill-digested) दार्शनिक उपपत्तियों को पुरूरवा तथा उर्वशी के मुख में बारी-बारी से रख कर, 'उर्वशी' से किसी सुविचारित दर्शन प्राप्त करने की संभावना को खंडित कर दिया है। द्वन्द्व की सृष्टि करना अत्याधुनिक साहित्यिक फैशन है, और द्वन्द्व-मात्र का स्रष्टा कथमपि सुचिन्तित दर्शन नहीं प्रस्तुत कर सकता।

अतएव, 'उर्वशी' के अनुशीलन से न तो हमें आभ्यन्तरिक और न आध्यात्मिक ही शक्ति मिलती है।

यहीं यह भी निर्णय करना वांछनीय होगा कि नारी पात्रों के आचरणों से क्या हम कोई प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं? इस संबंध में हमारा निवेदन होगा कि उर्वशी के आचरण से हमें कोई संबल प्राप्त नहीं होता—वह हमारी प्रेमिका अथवा पत्नी बनने के योग्य नहीं है, जननी बनने के साहस का भी उसमें एकान्त अभाव है। पुरूरवा के साथ-साथ वह भी बहक गई है, 'इमिटेशन' दार्शनिक बनने का मोह उसे भी अधिग्रस्त कर गया है। वह जीवन में 'कवित्व' का संचार भी नहीं कर पाई है। देखिए, वह क्या कहती है—

"मैं मानवी नहीं, देवी हूँ; देवों के आनन पर,
सदा एक झिलमिल रहस्य-आवरण पड़ा होता है।
उसे हटाओ मत, प्रकाश के पूरा खुल जाने से,
जीवन में जो भी कवित्व है, शेष नहीं रहता है।"

अतएव, उर्वशी से कोई प्रेरणा अथवा शक्ति आप नहीं पा सकेंगे। अब दो नारी पात्र, सुकन्या और औशीनरी, बच जाते हैं। सुकन्या ऋषि-पत्नी है। वह च्यवन को सिद्धि-रूप में प्राप्त हुई है। उसे अपने ऋषिभर्त्ता पर गर्व है: "किन्तु चित्रलेखे ! मुझको अपने महर्षि भर्त्ता पर ग्लानि नहीं, निस्सीम गर्व है।" वह निरंतर भोग में निरत रहने की बुद्धिमत्ता का प्रतिवाद करती है, "सतत भोग-रत नर क्या जाने तीक्ष्ण स्वाद जीवन का ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और योगी के प्रेम की अभ्यर्थना : "पर योगी का प्रेम धूप से छाया में आना है।"

प्रश्न उठता है, क्या सुकन्या सचमुच ऋषि भर्त्ता से संतुष्ट है ? क्या वह सचमुच लौकिक प्रणय की धूप से तापसी प्रेम की शीतल छाया में आकर परितृप्त है ? बात चौंकाने वाली होगी, किन्तु मैं कहता हूँ सुकन्या का संपूर्ण संतोष आभ्यन्तरिक नहीं है, उसकी जड़ें गहराई तक नीचे नहीं गई हैं। सुकन्या अपनी परितृप्ति का पूरा नाट्य करती है—

"क्या कुछ मिला नहीं मुझको दयिता महर्षि की होकर ?"
"शिखर-शिखर तक उड़ने में, जाने, कौन प्रमोद-लहर है !
किन्तु, एक तरु से लग सारी आयु बिता देने में
जो प्रफुल्ल, घन, गहन शान्ति है, वह क्या कभी मिलेगी
नये-नये फूलों पर नित उड़ती ·फिरनेवाली को ?"

लेकिन' बाद वाली पंक्तियाँ सुकन्या के इस नाट्य का रहस्य खोल देती हैं। वह स्वीकार करती है कि नारी के भी एक से अधिक प्राण होते हैं और शायद वह अपने 'शरीर-मंदिर की सुन्दर चित्रकारी' से विभिन्न पुरुषों को जीवित रख सके—

"स्यात्, मात्र छू भित्तियोषिता के शरीर-मंदिर की,
धनु, प्रसून, उन्नत तरंग की जहाँ चित्रकारी है।"

किन्तु, सुकन्या अनुभव करती है कि भौंहों के धनुष, कपोलों के कुसुम तथा उन्नत उरस्यों की तरंगें, ये सभी क्षण-भंगुर हैं और यौवन के इन प्रतीकों के नष्ट हो जाने पर—

"तब फिर अंतिम शरण कहाँ उस हतभागी नारी की ?"

अर्थात्, नारी हतभागिनी है क्योंकि पुरुषों को आकर्षित करने वाले उसके उक्त अंगों एवं अवयवों का सौन्दर्य क्षण-स्थायी हैं; अर्थात्, सुकन्या का "एकचारिणी" बनना[1] स्वभाव-प्रेरित परिणाम नहीं है, अपितु अनिवार्य की बाध्यता है। वह इसे स्वयं स्पष्ट कर देती है—

---

१. "एकचारिणी मैं क्या जानूँ स्वाद विविध भोगों का ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"इसीलिए, कहती हूँ, जब तक हरा-भरा उपवन है,
किसी एक के संग बाँध लो तार निखिल जीवन का,
न तो एक दिन वह होगा जब गलित, म्लान अंगों पर
क्षण भर को भी किसी पुरुष की दृष्टि नहीं विरमेगी;
बाहर होगा विजन निकेतन, भीतर प्राण तजेंगे
अन्तर के देवता तृषित भीषण हाहाकारों में।"

अतएव, यह स्पष्ट है कि सुकन्या की "एकचारिणी" बनने वाली 'थीसिस' परिस्थिति की अनिवार्यता से प्रसूत है, उसकी विवशता-पूर्ण स्वीकृति है। सुकन्या की पहली ही उक्ति "मुझे अपने महर्षि भर्त्ता पर ग्लानि नहीं, निस्सीम गर्व है" में उसकी यह मनःस्थिति ध्वनित हो गई है—'ग्लानि नहीं' के निषेधात्मक कथन के बाद 'निस्सीम गर्व है' के स्वीकारात्मक कथन में। पहला निषेधात्मक कथन, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, यहाँ सत्य की अपह्नुति की ओर संकेत करता है।

अतएव, स्पष्ट है कि सुकन्या के चरित्र से प्रेरणा एवं शक्ति की उपलब्धि नहीं हो सकती।

अब, औशीनरी ही एक-मात्र ऐसी नारी पात्र है जिससे शायद शक्ति एवं प्रेरणा की उपलब्धि हो सके। दिनकर का कथन है कि "देवियों में द्वन्द्व नहीं होता, वे त्रिकाल अनुद्विग्न, निर्मल एवं निष्पाप होती हैं।"[1] किन्तु, उनका यह कथन उनके चित्रणों से ही मिथ्या सिद्ध हो जाता है। सुकन्या के चरित्र में भी द्वन्द्व की झिलमिल छाया वर्तमान है जिसे वह सोच-विचार के बाद दमित-शमित कर लेती है। औशीनरी में द्वन्द्व प्रत्यक्ष तरंगित हो रहा है। वह पतिव्रता है, किन्तु ऐसी नहीं जो सपत्नियों को स्वीकार करती चले। जब निपुणिका बताती है कि महाराज उर्वशी के साथ आजीवन विचरण करेंगे, तब औशीनरी कहती है: "जीते जी यह मरण झेलने से अच्छा मरना है।" किन्तु, वह 'कुल-वनिता' है और धर्म के लिए

१. भूमिका पृ० (ग)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवन धारण करने की आवश्यकता को अन्ततः समझ जाती है। पुरुष-प्रेम की टीका करते हुए भी, वह 'आसुओं की माला पिरोने' के लिए तत्पर हो जाती है—

"पुरुष चूमता हमें अर्ध निद्रा में हमको पाकर, पर,
हो जाता विमुख प्रेम के जग में हमें जगा कर।
और जगी रमणी प्राणों में लिये प्रेम की ज्वाला,
पंथ जोहती हुई पिरोती बैठ अश्रु की माला।
वही आँसुओं की माला अब मुझे पिरोनी होगी।"

औशीनरी का अन्तर्द्वन्द्व—यह कि वह पति की "नयी-नयी प्रतिमाओं का नित्य नया प्यार" पाने की प्रवृत्ति का प्रतिरोध करे या धर्म के नाम पर मौन ग्रहण कर लेवे—कविता के अन्त तक प्रत्यक्ष होता रहा है। पुरूरवा की प्रव्रज्या पर वात्सल्य एवं पति-वियोग की दारुण व्यथा, इन दो विरोधी भावनाओं का एक-साथ संचार उसके मानस में हुआ है। उसने कुमार आयु को हृदय से लगाया है और जननी का समस्त प्यार-दुलार, प्रबोध-सान्त्वना उसे प्रदान की है—

"हाय, पालती कितने सुख, कितनी उमंग, आशा से,
मिला मुझे होता यदि मेरा तनय कहीं बचपन में।"
"पिता गये वन, किन्तु, अरे माता तो यहीं खड़ी है।
बेटा! अब भी तो अनाथ नरनाथ नहीं ऐलों का।
तुझे प्यास वात्सल्य-सुधा की, मैं भी उसी अमृत से,
बिना लुटाये कोष हाय! आजीवन भरी रही हूँ।"

वात्सल्य के इस प्रभावशाली प्रदर्शन के बाद, औशीनरी का रोना-कलपना उचित नहीं प्रतीत होता। औशीनरी के करुण विलाप में, दिनकर मैथिलीशरण जी की यशोधरा एवं उर्मिला से, बिना सोचे-समझे, प्रभावित हो गए हैं। जैसे गुप्त जी ने इन उपेक्षित ललनाओं को काव्य-संसार में महत्त्व प्रदान किया, वैसे ही दिनकर ने भी औशीनरी को प्रकाश-पंक्ति में लाने का प्रयत्न किया है। यशोधरा की मनोवेदना की उन्होंने जैसे औशी-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नरी में 'कलम' लगा दी है। आयु के प्रथम दर्शन पर ही वात्सल्य का जो सुंदर उज्ज्वार औशीनरी में फूट गया था, उसकी यदि अन्त तक रक्षा की गई होती, तो शायद औशीनरी का चरित्र हमारे लिए शक्ति का स्रोत सिद्ध हुआ होता। किन्तु, ऐसा नहीं हुआ, और अन्तिम विजय कुमार आयु के हाथों में ही चली गई। देखिए, वह क्या कहता है—

"माँ ! हताश मत हो, भविष्य वह चाहे कहीं छिपा हो,
मैं आया हूँ अग्रदूत बन उसी स्वर्ण-जीवन का।
पिया दूध ही नहीं, जननि ! मैं करुणामयी त्रिया के,
क्षीरोज्ज्वल कल्पना-लोक में पलकर बड़ा हुआ हूँ।
जो कुछ मिला, मातृ-ममता से, माँ के सजल हृदय से,
पिता नहीं मैंने जीवन में माताएँ देखी हैं।
दिया एक ने जन्म, दूसरी माँ ने लगा हृदय से,
पाल-पोस कर बड़ा किया आँखों का अमृत पिला कर।
अब मैं होकर युवा खोजते हुए यहाँ आया हूँ,
राजमुकुट को नहीं, तीसरी माँ के ही चरणों को।
माँ ! मैं पीछे नृप-किशोर, पहले तेरा बेटा हूँ॥"

अतएव, आयु के मनोबल के सामने, औशीनरी का चरित्र एकदम दुर्बल प्रमाणित होता है। तापस-नारी सुकन्या, अपितु, अपनी उपदेश-भंगिमा से हमें तनिक आकर्षित कर लेती है—

"अटक गयी हो तरी मनुज की किसी घाट-अवघट में,
तो छिगुनी की शक्ति लगा नारी फिर उसे चला दे;
और लुप्त हो जाय पुनः आतप, प्रकाश, हलचल से।"

किन्तु, राज-महिषी औशीनरी मनसा अत्यन्त दुर्बल एवं अशक्त सिद्ध होती है। दिनकर की दलील है कि कविता की भूमि केवल दर्द को पहचानती है,[1] कदाचित् इसी लिए, उन्होंने औशीनरी को, जिसमें शक्ति एवं दायित्व-पालन की असीम

१. भूमिका, पृष्ठ (छः)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संभावना का प्रकाश दिखाया जा सकता था, केवल 'छिगुनी की शक्ति' लगाने वाली नारी के रंगों से ही रंजित कर दिया है।

अतएव, अन्तिम विश्लेषण में, 'उर्वशी' के किसी भी चरित्र से हमें शक्ति एवं स्फूर्ति, मनोबल एवं अनु-प्रेरणा प्राप्त नहीं होते। प्रकाश का कोई दीपक यदि कहीं टिमटिमाता दिखाई पड़ता है, तो वह है कुमार आयु जिसके मुख में केवल सोलह पंक्तियाँ ही रखी गई हैं।

हमने अब तक केवल 'शक्ति' की ही चर्चा की है और अर्नाल्ड द्वारा कथित 'आनन्द' का कोई उल्लेख नहीं किया है। किन्तु, अर्नाल्ड 'शक्ति एवं आनंद' को प्रायः समानार्थक समझता है। जिस वस्तु से हमें आभ्यन्तरिक शक्ति एवं प्रेरणा मिलेगी, वह वस्तु हमारे लिए आनंद-दायक भी सिद्ध होगी। अतएव, 'शक्ति एवं आनंद' (Strength and joy) के युग्म को विघटित नहीं किया जा सकता। एक दूसरे समीक्षक डी-किन्सी ने, इसी लिए, ललित साहित्य को 'शक्ति का साहित्य' (Literature of power) कहा है। अतएव, 'उर्वशी' के चरित्रों से न तो शक्ति ही मिलती है, न आनंद ही। और, उसी कारण, 'उर्वशी' हमारे 'क्लैसिक' (श्रेष्ठ) काव्यों की श्रेणी में समाहित नहीं हो सकती।

आप कहेंगे कि हमने पाश्चात्य काव्यादर्शों के निकष पर 'उर्वशी' की परीक्षा की है। अतएव, तनिक भारतीय आदर्शों की कसौटी पर भी इसे कस लीजिए। रस का आदर्श हमारे बीच सनातन काल से प्रतिष्ठित रहा है। 'उर्वशी' का प्रधान 'अंगी' रस क्या होगा ? क्या शृङ्गार ? क्या शान्त ? उत्तर स्पष्ट है, दोनों में से कोई नहीं। पूरी पुस्तक में इस तथ्य की विवेचना आपको मिली होगी। पुनः एक और प्रश्न कर लीजिए। क्या 'उर्वशी' का रसानंद 'ब्रह्मानंद-सहोदर' की कोटि में परिगणित हो सकता है ? उत्तर होगा, नहीं ! नहीं इसलिए कि यहाँ किसी एक रस की अखंड धारा में पाठक ऊब-चूब होने ही नहीं पाता। दिनकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वयं 'ध्वनि' सिद्धान्त के प्रशंसक हैं।[1] लेकिन, 'उर्वशी' में समग्रतया विचार करने पर, ध्वनि का अभाव है। दिनकर ने अपनी दार्शनिक उपपत्तियों का इतना विजृम्भण किया है कि 'उर्वशी' निविड़ अभिधावादी रचना बन गई है। रिचार्ड्स ने मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों में सामंजस्य स्थापित करना कविता का मूल उद्देश्य माना है जो भारतीय रस-सिद्धान्त का ही नवीन मनोवैज्ञानिक संस्करण है। 'उर्वशी' हमारी अन्तर्वृत्तियों में कितना, किस प्रकार का सामंजस्य उत्पन्न करती है और उससे हमें कितना मानसिक संतोष मिलता है, यह आप स्वतः समझ सकते हैं।

अतएव, भारतीय काव्यादर्शों की कसौटी पर भी 'उर्वशी' सुवर्ण नहीं सिद्ध होती। अतएव, भारतीय आदर्शों के अनुसार भी इसे 'क्लैसिक' होने का गौरव नहीं दिया जा सकता। दिनकर का कथन है कि इसके प्रणयन की "प्रेरणा" उन्हें आठ वर्ष तक "ग्रसित" रखे रही।[2] इस प्रेरणा का पूर्ण परिपाक उनके भीतर नहीं हो सका, यह प्रेरणा उनके अन्तर्मानस के साथ घुल-मिल नहीं सकी, पूर्णतया 'इंटिग्रेटेड' नहीं हो सकी। अन्यथा, इतना विशृङ्खल प्रणयन उनकी सिद्ध-समर्थ प्रतिभा से प्रसूत नहीं हुआ होता। श्रेष्ठ कविता किसी मोह से नहीं लिखी जाती। वह लिखी जाती है तब, जब कवि-मानस 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की पूर्ण समंजस प्रतिमा के अन्तर्दर्शन से पर्याप्लुप्त हो जाता है। इस तथ्य को आंग्ल कवि शेली ने यों

---

१. "इस प्रकार, कविता के संबंध में आनंदवर्धन को जो सूक्ष्म ज्ञान नवीं सदी में प्राप्त हुआ, उससे अधिक बारीकी पर दुनिया आज भी नहीं पहुंची है। शायद, ध्वनि से आगे बारीक तत्त्व कविता में और कोई है ही नहीं।"—दे०

'अवन्तिका', जन०, १९५४, में दिनकर का निबंध' पृ० १४२

२. 'उर्वशी' की भूमिका, पृ० (ज)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यंजित किया है : 'कविता प्रसन्नतम मानसों के प्रसन्नतम क्षणों की प्रसन्नतम अभिव्यक्ति' है।' दिनकर ने 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की समंजस प्रतिमा का अन्तर्दर्शन नहीं किया। इसी कारण, उनकी रचना 'प्रसन्नतम क्षणों की प्रसन्नतम अभिव्यक्ति' नहीं बन सकी। इसी कारण, डॉ० नगेन्द्र को भी कहना पड़ा कि 'उर्वशी' अपने "समग्र रूप में न कामायनी की श्रेणी में आती है और न प्रियप्रवास तथा साकेत की श्रेणी में।"

शुचि, मेध्य एवं उज्ज्वल प्रणय-संवेदनों के साथ इतना अन्याय कदाचित् किसी भी अन्य रचना में नहीं हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

KATHMANDU NEPAL

ॐ नमः शिवाय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

KATHMANDU
NEPAL

हिन्दी

हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu